मा०- १६४

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(परिशिष्टाङ्क २)

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,९०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि॰ सं॰ २०४७, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१६, जून १९९० ई॰

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें २.०० रु॰
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ४४.००रु॰
विदेशमें ६ पौंड
अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीबद्रीनाथजी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
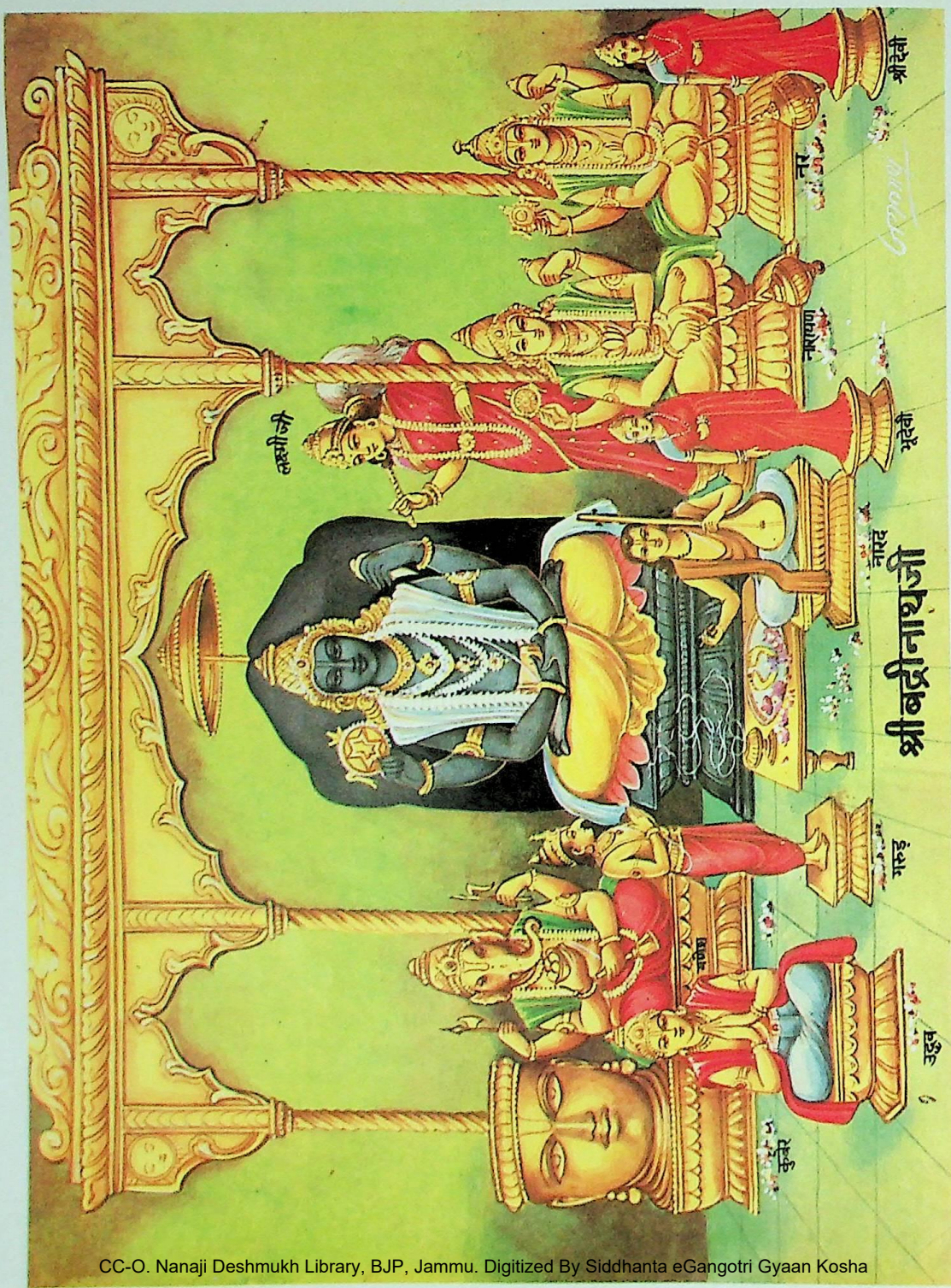
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

वर्ष ६४ } गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि॰ सं॰ २०४७, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१६, जून १९९० ई॰ { संख्या ३
पूर्ण संख्या ७६०

श्रीबदरीश-महिमा

यस्य दर्शनमात्रेण पातकानि महान्त्यपि। विलीयन्ते क्षणादेव सिंहं दृष्ट्वा मृगा इव ॥
धर्माधर्मान् विजित्याथ बदरीशं विभुं हरिम्। दृष्ट्वा मुक्तिमुपायान्ति विनायासं षडानन ॥
विना ज्ञानेन योगेन तीर्थाटनपरिश्रमैः। एकेन जन्मना जन्तुः कैवल्यं पदमश्नुते ॥

(स्कन्दपु॰, वैष्णवखण्ड, बदरिकाश्रममा॰, अध्याय ५)

(श्रीबदरीश-माहात्म्य बतलाते हुए भगवान् शिवने कहा—) 'षडानन ! जिन बदरी-तीर्थके स्वामी भगवान् श्रीहरिका दर्शन करनेमात्रसे बड़े-बड़े पातक क्षणभरमें उसी प्रकार विलीन हो जाते हैं, जिस प्रकार सिंहको देखकर मृग आदि पलायित हो जाते हैं; उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य धर्म और अधर्मपर विजय प्राप्तकर अनायास ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं तथा ज्ञान और योग-साधनके बिना ही उनका दर्शन करनेमात्रसे केवल एक जन्ममें ही प्राणी मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कल्याण

याद रखो—सभी जीव नित्य, अखण्ड, पूर्ण, अनन्त, असीम, अपरिवर्तनशील और अविनाशी सुख चाहते हैं। यह सुख केवल एक भगवत्स्वरूपमें ही है। भगवान् ही नित्य, सत्य, सनातन, सम, अनन्त, एकरस, अखण्ड, असीम, अविनाशी परम तत्त्व हैं। अतएव पूर्ण सुखस्वरूप या पूर्ण रसस्वरूप वे अथवा उनका परम दिव्य प्रेम ही परम साध्य है। उसीकी प्राप्तिके लिये उपासना होनी चाहिये। इसलिये सबसे पहले यह निश्चय करना है कि मेरे जीवनका साध्य केवल एक भगवान् या उनका दिव्य प्रेम है और उन भगवान्‌की कृपाके बलपर ही इस साध्यकी प्राप्तिके लिये नित्य उपासना करना मेरा एकमात्र जीवन-साधन है।

याद रखो—भारतीय वैदिक उपासनाके अतिरिक्त समस्त जगत्‌में जितनी भी विभिन्न प्रकारकी उपासनाएँ प्रचलित हैं तथा उनके जितने भी विभिन्न उपास्यदेव हैं, वे सब उपासनाएँ किसी-न-किसी रूपमें एक ही सत्य तत्त्वकी होती हैं और वे सब उपास्यदेव भी एक ही सच्चिदानन्दघन परम तत्त्व हैं, चाहे वे सगुण-साकार हों, निर्गुण-निराकार हों, ब्रह्मरूप हों, ईश्वररूप हों, देवरूप हों, महापुरुषरूप हों अथवा प्रकृति या नियमरूप हों।

याद रखो—जब सभी उपासक एक ही उपास्यतत्त्व-की उपासना करते हैं, तब किसी भी उपासनापद्धतिसे घृणा मत करो। किसीकी निन्दा मत करो। न किसीकी ओर देखकर ललचाओ। अपनी उपासनाके प्रति उपास्यसे भी बढ़कर आदर तथा श्रद्धा रखो। उपासना या साधनाका तिरस्कार करनेवाला, उससे जी चुरानेवाला, उससे ऊबनेवाला, उसको बला टालनेकी भाँति अवहेलनासे सम्पादन करनेवाला, देवोपासनाको विपत्तिनाश या भोगप्राप्तिके लिये बेचनेवाला और उपासनाका अभिमान करनेवाला वस्तुतः उपास्यदेवकी प्राप्ति नहीं कर पाता। अतएव उपासना निरभिमान होकर श्रद्धापूर्वक करो। उपास्यका चुनाव करने और उपासना-पद्धतिको स्वीकार करनेके बाद तो बस, उपासनामय ही बन जाओ। उपास्य कब मिलेंगे, इसकी चिन्ता मत करो, न धैर्य छोड़ो। हाँ, अपनी उपासना ठीक चल रही है या नहीं, इसकी जाँचके लिये इतना अवश्य देखते रहो कि तुम्हारे अंदर उपास्यके प्रति आदर, प्रेम, दैवी सम्पत्तिके गुण और उपासनामें उत्तरोत्तर रुचि बढ़ रही है या नहीं। उपासना-मार्गमें भय तथा प्रलोभन आयेंगे, पर उनके वशमें नहीं होना है। किसी भी भयानक भय या लोभनीय प्रलोभनको देखकर उपासनासे कदापि तनिक भी डिगना नहीं है।

याद रखो—देवताकी उपासनामें बहुत-से विघ्न आया करते हैं। उनसे सावधान रहनेके लिये उनमेंसे कुछके नाम लिखे जाते हैं। इनसे सावधान रहो—

आहारदोष, आलस्य, असूया, अस्वस्थता, अश्रद्धा, अविश्वास, अन्धविश्वास, अकर्मण्यता, अधैर्य, असहिष्णुता, अपवित्रता, अनिश्चय, कुतर्क, कुसङ्ग, घृणा, परनिन्दा, प्रसिद्धि, पुजवानेकी इच्छा, परदोषदर्शन, पर-चर्चा, घृणा, द्वेष, मानकी चाह, निर्दयता, दुराग्रह, चपलता, जल्दबाजी, बाहरी वेषभूषा, आडम्बर, विवाद या शास्त्रार्थ, शरीरके आरामकी चाह, विलासिता, दूसरोंसे सेवा करानेकी वृत्ति, लोकरञ्जनमें रुचि, माता-पिता-गुरुजनोंका तिरस्कार, शास्त्र तथा संतवचनोंमें संदेह, भजनमें अरुचि या लापरवाही, सर्वथा कर्मत्याग या बहुधंधीपन, दूसरोंके उपास्य तथा उपासनाके प्रति लोभ, दूसरोंके उपास्य, उपासना तथा धर्मसे द्वेष, उपासनाका अभिमान, ब्रह्मचर्यका खण्डन, पैसोंकी आसक्ति, किसी भी वस्तु, स्थान या प्राणीमें ममता, किसी भी वस्तु-प्राणी-परिस्थितिमें द्रोह, विपत्तिमें घबराकर और सम्पत्तिमें फूलकर कर्तव्यको भूल जाना, नाम आदिके लिये आश्रमादिकी स्थापना करना, दलबंदी करना और लक्ष्यको भूल जाना—इन विघ्नोंसे सदा बचो।

भारतीय वर्णाश्रमधर्म माननेवालोंके अतिरिक्त अन्यान्य सभी विभिन्न देशोंके, विभिन्न धर्मोंके, विभिन्न सम्प्रदायोंके तथा विभिन्न मतवादोंके लोगोंको अपनी-अपनी रुचि, निष्ठा, श्रद्धा तथा मान्यताके अनुसार देवोपासना करनी चाहिये।

'शिव'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवता और उनके महनीय चरित्र—

देवशिल्पी प्रजापति विश्वकर्मा (त्वष्टा)

विश्वकर्मन् नमस्तेऽस्तु विश्वात्मन् विश्वसम्भव।
अपवर्गोऽसि भूतानां पञ्चानां परतः स्थितः॥

(महा॰, शान्ति॰ ४७। ८५)

'हे विश्वकर्मन्! यह सम्पूर्ण विश्व आपकी रचना है, आप समस्त विश्वके आत्मा और उत्पत्तिस्थान हैं तथा पाँचों भूतोंसे अतीत होनेके कारण नित्यमुक्त हैं, आपको मेरा नमस्कार है।'

प्रजापति विश्वकर्मा वैदिक देवता हैं। वेदोंमें इनके महनीय एवं उदात्त चरित्रका वर्णन हुआ है। विश्वकर्मा शब्दकी व्युत्पत्तिमें निरुक्ताचार्योंने बतलाया है कि संसारके सभी कार्योंका करनेवाला एवं विश्वका रचयिता ही विश्वकर्मा नामसे निर्दिष्ट है। आचार्य स्कन्दस्वामीके अनुसार विश्वकर्मा अन्तरिक्ष स्थानीय या मध्य-स्थानीय देवता हैं, जो वायु एवं वृष्टिके संचालक तथा समस्त प्राणियोंकी चेष्टाओंके प्रेरक हैं।

ऋग्वेदके दशम मण्डलके दो सूक्त (८१-८२) विश्वकर्माके सूक्त हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन सूक्तोंके द्रष्टा तथा स्तोतव्य देवता भी विश्वकर्मा ही हैं। इस प्रकारकी स्थिति वैदिक सूक्तोंमें बहुत कम देखनेको मिलती है। ऋग्वेदके भाष्यकर्ता आचार्य सायण तथा वेंकट माधव आदिने इन सूक्तोंके आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक दो-दो अर्थ किये हैं। एक अर्थमें उन्हें सर्वस्रष्टा देवता दिखाया गया है और दूसरे भावमें सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त, सर्वद्रष्टा, सर्वकर्ता, अनेक मुख, बाहु आदिके द्वारा द्यावापृथिवीको उत्पन्न करनेवाला परमात्मा ही बताया गया है। वे ही सम्पूर्ण विश्वके पति, नियामक, पालक, सभी यज्ञोंके भोक्ता एवं स्वामी कहे गये हैं। वे समस्त विद्याओंके स्वामी वाचस्पति तथा कलाओंके आचार्य कहे गये हैं। इनके सभी कर्मोंको अत्यन्त प्रशंसनीय, आश्चर्ययुक्त एवं अलौकिक कहा गया है। इन्हें धाता, विधाताकी संज्ञा दी गयी है। ऋग्वेद (१०। ८२। ३) में उनकी प्रशंसा एवं महिमाके बारेमें कहा गया है कि विश्वकर्मा सम्पूर्ण प्राणियोंके उत्पादक, पालक, समस्त देवताओंके निवास-स्थान तथा विश्वके सभी भुवनोंको ठीक-ठीक जाननेवाले एवं उनकी न्यूनता और अधिकताके अनुसार व्यवस्था करनेवाले, सभी देवताओंके नाम, धाम और स्वरूपके निर्माता, एकमात्र सबके स्वामी तथा सभी प्राणियोंके एकमात्र प्राप्तव्य हैं—

यो नः पिता जनिता यो विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव
तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।

इसी सूक्तमें पुनः आगे कहा गया है कि जिसके निर्गुण और सगुण दोनों रूप हैं, जिसमें सारे गुण पर्यवसित होते हैं, जो स्वर्गसे भी ऊपर है, पृथ्वीसे परे है तथा देवता और असुरोंद्वारा दुर्विज्ञेय है, जिसके शरीरमें देवतालोग सभी लोकोंको स्थित देखते हैं और जिसे कोई ठीक प्रकारसे जान नहीं पाता, वह विश्वकर्मा सभी प्रकार स्तुत्य है। वाजसनेयिसंहिता (२९। ९) के अनुसार इन्हें समस्त संसार तथा ब्रह्माण्डोंका उत्पादक पिता कहा गया है **'त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान।'**

वेदोंमें जहाँ एक ओर उन्हें परब्रह्म परमात्मा अव्यक्त तत्त्व बताया गया है, वहीं दूसरी ओर उन्हें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी रचना करनेवाले उपास्य तथा आराध्यदेवके रूपमें भी चित्रित किया गया है। कहीं विश्वकर्मा नामसे तथा कहीं त्वष्टा नामसे अभिहित करते हुए उनके दिव्य स्वरूपका चित्रण किया गया है। इनका शरीर दिव्य बताया गया है और इनके हाथमें सदा ही एक लोहेकी तेज धारवाली कुल्हाड़ी (बसूली) विद्यमान रहती है—

'वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः[1]।'

(ऋग्वेद ८। २९। ३)

इसी अयोमयवाशी अथवा कुल्हाड़ीसे भगवान् विश्वकर्मा शत्रुओंका संहार करते हैं तथा तक्षण आदि क्रिया-कलाओंका समस्त कार्य करते हैं।

ऋग्वेद (६। ४७। १९) में भगवान् विश्वकर्माको दो घोड़ोंसे युक्त एक दिव्य रथपर वेगसे चलते हुए दिखाया गया

१- इस ऋचाके सायण-भाष्यमें कहा गया है—'.... एकस्त्वष्टृनामको देवः आयसीम् अयोमयधारां वाशीं वाश शब्दे शब्दयत्याक्रन्दयति शत्रूननयेति वाशी तक्षणसाधनं कुठारः तं स्वकीयहस्ते बिभर्ति धारयति।'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है और उनके स्वरूपको सूर्यके समान तेजस्वी बताया गया है। विश्वकर्माके हाथ तथा उनका ऊपरी भाग अर्थात् बाहु भी अत्यन्त तेजस्वी है, इसलिये उनका सुपाणि भी एक नाम है[1]।

ऋग्वेद (१।८५।९) में उन्हें अत्यन्त दक्ष कुशाग्रबुद्धि तथा कुशल शिल्पी कहा गया है, जो क्षणमात्रमें अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्रों तथा आभूषण आदिका निर्माण करनेमें दक्ष हैं। वे चित्रकला, भित्तिकला तथा वास्तुकलामें अत्यन्त निपुण तथा इन कलाओं और विद्याओंके प्रवर्तक आचार्य हैं। वे रूपोंके निर्माता अथवा रूप (आकार-प्रकार) के निष्पादक हैं। उन्होंने ही अशेष प्राणियोंको रूपसम्पन्न बनाया है[2] और वे ही गर्भाशयमें गर्भके विकासक और मानवीय तथा पाशविक सभी रूपोंके विधायक हैं[3]। उन्होंने सभी प्रकारके प्राणियोंका सर्जन किया है और वे ही उन सबका पालन-पोषण करनेवाले हैं—**'देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान'** (ऋ० ३।५५।१९)।

वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा प्रायः सभी पुराणोंमें विश्वकर्माको अष्टम वसु प्रभासका पुत्र बताया गया है[4], जो प्रासाद, भवन, उद्यान, प्रतिमा, आभूषण, तालाब, उद्यान, कूप आदिके निर्माता हैं तथा देवताओंके शिल्पी और वर्धकि (बढ़ई) के रूपमें प्रसिद्ध हैं। शिल्पविद्यामें प्रासादशिल्प, आभूषण-घट्टनशिल्प, धातु एवं रंगोंके मिश्रण-सम्बन्धी शिल्प, काष्ठशिल्प, उद्यान-रचना-शिल्प, पात्र-शिल्प, शस्त्रनिर्माण-शिल्प, वायुयान-निर्माण-शिल्प, भित्ति-शिल्प आदि सभी शिल्पों, चित्रकलाओं, स्थापत्यकलाओं तथा वास्तुविद्याओंका समावेश होता है। भगवान् विश्वकर्मा ही सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना करनेवाले तथा सभी शिल्पोंके आचार्य हैं, इसीलिये ये प्रजापति कहलाते हैं। मत्स्यपुराण (अ०२५२) में वास्तुविद्याके भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, नारद, भगवान् शङ्कर आदि अठारह आचार्य बताये गये हैं, किंतु उनमेंसे देवताओंके शिल्पीके रूपमें विश्वकर्माकी तथा दानवोंकी शिल्पीके रूपमें मयकी विशेष प्रसिद्धि है। भगवान् विश्वकर्माका 'विश्वकर्मशिल्पम्' नामक ग्रन्थ शिल्पशास्त्रका आर्ष ग्रन्थ माना गया है।

विश्वकर्माका आविर्भाव

प्रायः सभी पुराणेतिहासादि ग्रन्थोंमें विश्वकर्माकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें यह आख्यान प्राप्त होता है कि देवगुरु बृहस्पतिकी बहन अत्यन्त विदुषी एवं योगविद्यामें निपुणा थीं। वे प्रायः तीनों लोकोंमें अनासक्त भावसे विचरण करती हुईं विशुद्ध ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थीं। कालान्तरमें उन्होंने वसुओंमें अष्टम वसु प्रभाससे विवाह कर लिया। प्रजापति विश्वकर्माकी उन्हींसे उत्पत्ति हुई।

विश्वकर्मा आरम्भसे ही बहुत तीक्ष्ण बुद्धिके थे और शिल्प-कलाके प्रति इनकी विशेष अभिरुचि थी। माता-पिताके ज्ञानके प्रभावसे ये शिल्पविद्यामें अग्रणी हो गये और सभी प्रकारकी कलाओंमें पारङ्गत हो गये। तबसे लेकर देवताओंके सभी अस्त्र, शस्त्र, आभूषण, अलङ्कार, सभी विमानों तथा श्रेष्ठ प्रासादोंके निर्माता हो गये। आचार्य विश्वकर्माद्वारा प्रदत्त शिल्पविद्याका ही आश्रय ग्रहणकर बहुत-से मनुष्य अपना जीवन-निर्वाह करते हैं—

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी।
योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचरत्युत॥
प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु।
विश्वकर्मा महाभागस्तस्यां जज्ञे प्रजापतिः॥
कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकी।
भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः॥
यः सर्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः॥

(विष्णु० १।१५।११८—२१)

प्रजापति विश्वकर्माका परिवार

दैत्योंकी बहन रचना नामकी दिव्य कन्याको विश्वकर्माकी

१-प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम्। (ऋ० ६।४९।९)

२-य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा। तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्॥ (ऋ० १०।११०।९)

३-त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून् विश्वान् त्समानजे। तेषां नः स्फातिमा यज॥ (ऋ० १।१८८।९)

४-विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः। ....॥
प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु। तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः॥ (मत्स्यपु० ५।२७-२८)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पत्नी कहा गया है[१], जिससे संनिवेश तथा विश्वरूप नामक दो पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। भगवान् विश्वकर्माकी जिन संततियोंका उल्लेख मिलता है, उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध भगवान् सूर्यकी पत्नी संज्ञा हैं, जिन्हें सुरेणु, द्यौ, त्वाष्ट्री एवं प्रभा आदि नामोंसे अभिहित किया जाता है। विश्वकर्माकी बर्हिष्मती, चित्राङ्गदा तथा कशेरु—ये तीन पुत्रियाँ और थीं। विश्वकर्माके चार पुत्रोंका विशेष उल्लेख प्राप्त होता है—नल, संनिवेश, विश्वरूप (त्रिशिरा) तथा वृत्रासुर। नल श्रीरामका सेनापति था, जिसने अपने शिल्प-नैपुण्यसे समुद्रपर सेतु बाँधकर मार्ग प्रशस्त कर दिया। इनका द्वितीय पुत्र विश्वरूप था, जिसने देवराज इन्द्रको 'नारायण-कवच[२]' (भाग० ६। ८) का उपदेश किया था।

इस प्रकार प्रजापति विश्वकर्माकी रचना आदि स्त्रियोंसे संनिवेश, विश्वरूप (त्रिशिरा), नल वानर एवं वृत्रासुर नामक चार पुत्र तथा संज्ञा (भगवान् सूर्यकी पत्नी), बर्हिष्मती, चित्राङ्गदा और कशेरु—ये चार कन्याएँ थीं।

प्रजापति विश्वकर्माकी अद्वितीय कृति—पुष्पक विमान

देवताओंके विशिष्ट उपकरणोंमें विमानोंका प्रमुख स्थान है और उन दिव्य विमानोंमें भी पुष्पकका स्थान सर्वोपरि है। उसकी रचनाको सौन्दर्य आदिकी दृष्टिसे मापा नहीं जा सकता था, उसका निर्माण अनुपम रीतिसे किया गया था। स्वयं **अद्भुत शिल्पी प्रजापति विश्वकर्माने ही उसे बनाया था और** बहुत उत्तम कहकर उसकी प्रशंसा की थी[३]।

महर्षि वाल्मीकिने अपने आदिकाव्य श्रीमद्रामायणमें अनेक स्थानोंपर बड़ी भव्य भाषामें पुष्पक विमानका आकर्षक वर्णन किया है, किंतु सुन्दरकाण्डके आरम्भमें जहाँ हनुमान्‌जी लङ्कामें प्रवेशकर रात्रिमें सीता माताका अनुसंधान प्रारम्भ करते हैं और रावणके गृहमें एक ओर स्थित इस पुष्पक विमानको प्रथम बार देखते हैं, वहाँका वर्णन विशेष विस्तृत और उल्लेखनीय है।

पारिजात आदि दिव्य पुष्पोंके चूर्णोंसे अनेक प्रकारकी कलाकृतियों तथा भव्य दृश्योंसे सुशोभित होनेके कारण ही यह पुष्पक विमान कहलाता है। उसमें पुष्पोंके चूर्णोंसे पुष्पाकृतियाँ बनी थीं, किंतु पूरे पुष्प नहीं थे और इसी प्रकार निर्मित पुष्पाकृतियोंसे बड़े-बड़े वृक्षोंकी भी आकृति बनी थी और अनेक वृक्षोंकी अनूठी चित्रण-कलासे पर्वत, समुद्र और पृथ्वीका दिग्दर्शन होता था, किंतु वास्तवमें वहाँ न वृक्ष थे, न पर्वत थे और न समुद्र। अनेक रत्नोंसे जटित उस पुष्पक विमानका ऊपरी भाग अनेक ताराओं तथा चन्द्रमाओंसे मण्डित आकाशके समान सुशोभित हो रहा था। विमानोंमें कोई भी लौकिक वस्तु नहीं थी, सभी उपकरण दिव्य एवं लोकोत्तर थे। बैठनेका स्थान, शयनागार आदि अलग-अलग स्वतन्त्ररूपसे निर्मित थे, जो अत्यन्त सुखद तथा सभी सामग्रियोंसे सम्पन्न थे। वह विमान मनसे भी तीव्रगतिसे चलनेवाला, किसी प्रकार भी नष्ट न होनेवाला, दुर्धर्ष तथा विशेष पुण्यशील, यशःपूर्ण, सौभाग्यशाली व्यक्तियोंके द्वारा ही अधिष्ठित होने योग्य था।

इस विमानकी एक अन्य विशेषता यह थी कि वह चेतन एवं दिव्य होनेके कारण एक ही साथ असंख्य मनुष्य, देवता या अन्य प्राणियोंको अपनेमें स्थान दे सकता था, फिर भी उसमें स्थान अवशिष्ट रह जाता था। भगवान् श्रीरामकी अधिकांश सेना लंकासे अयोध्या इसी विमानसे आयी थी, फिर भी उसमें स्थान शेष था। यह प्रजापति विश्वकर्माकी कला-कुशलताकी ही विशेषता है।

इस प्रकार विश्वकर्माद्वारा निर्मित पदार्थोंमें चेतनताका अनुस्यूत होना भी कम आश्चर्यजनक नहीं है।

पुष्पक विमानका इतिहास

यह पुष्पक विमान ब्रह्माजीकी प्रेरणासे विश्वकर्माद्वारा निर्मित हुआ। इसे कुबेरकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उन्हें प्रदान कर दिया और वह बहुत दिनोंतक कुबेरके पास ही रहा। कुबेरपर आक्रमणकर लंकापति रावणने उसे अपने

१-त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचना नाम कन्यका। संनिवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान्॥ (श्रीमद्भा० ६। ६। ४४)

२-यह कवच आज भी सभी विष्णुकवचोंमें मुख्यरूपसे परिगणित होता है और भक्त साधकोंद्वारा श्रद्धापूर्वक पठित होता है।

३-तदप्रमेय[illegible]

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विजयचिह्नके रूपमें उनसे छीन कर स्वहस्तगत कर लिया[१]। लंकापर श्रीरामकी विजय होनेपर वह विमान उनके अधिकारमें आ गया। अन्तमें भगवान् श्रीरामने उस विमानके स्वामी यक्षाधिपति कुबेरके पास भेज दिया और वह विमान उन्हींके पास रह गया।

भगवान् विश्वकर्माकी अन्य विशिष्ट कृतियाँ

शिल्पकला, वास्तुकला, स्थापत्य तथा चित्रकला आदिके आद्य आचार्य होनेके कारण देवलोककी प्रासाद, उद्यान आदि सभी रचनाएँ उन्हींकी हैं और उन्हींकी कृपासे लोकमें प्रसृत हुई हैं तथा उन्हींसे काष्ठकला, तक्षण-कला, मूर्तिकला, कांस्यकला, धातुकला एवं मृद्भाण्डनिर्माण, वस्त्रनिर्माण, प्रासादनिर्माण आदि अनेकों कलाओंका जन्म हुआ। अतः सभी कलाओंके प्रवर्तकके रूपमें इनकी प्रसिद्धि सर्वविश्रुत है।

इनकी विशिष्ट कृतियोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी द्वारका नगरी, इन्द्रकी अमरावती, धर्मराज युधिष्ठिरका राजभवन तथा इन्द्रप्रस्थनगरी, वृन्दावन, यमसभा, वरुणसभा, अर्जुनके रथकी ध्वजा-पताका, इन्द्रकी सुधर्मासभा, विजय नामक ध्वज और वज्र, शिवका दिव्य रथ एवं देव-मुनियोंके भव्य प्रासाद आदि मुख्य हैं। त्रिकूटमें स्थित कुबेरकी राजधानी लंका भी इनके द्वारा निर्मित कही गयी है। इन्होंने एक ऐसे दिव्य पात्रका निर्माण किया था, जिसमें सदा अन्नादि दिव्य भोज्य पदार्थ भरे रहते थे और प्रयोग करनेपर भी रिक्त नहीं होते थे। देवताओंके अलंकरणों आदिका ये क्षणभरमें निर्माण कर देते थे। भगवती दुर्गादेवीके समस्त आभूषणों, चूडामणि, कटक, केयूर, हार, वस्त्र, उपवस्त्र, नूपुर, कमल तथा समस्त अस्त्र आदिका निर्माणकर विश्वकर्माने ही इन्हें प्रदान किया था[२]।

विश्वकर्माकी पूजा-उपासना

भगवान् विश्वकर्मा (त्वष्टा) की पूजा-उपासना, हवन आदिका वेदोंमें उल्लेख प्राप्त होता है। वाजसनेयिसंहिता (२९।९) के अनुसार अनेक लोगोंने इनकी उपासनासे अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्रों तथा शीघ्रगामी अश्वोंको प्राप्त किया[३]। ये संततिको भी प्रदान करनेवाले हैं। अतः पुत्रकामी भी इनकी उपासनासे यथेष्ट लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इनका विशेष पूजन सूर्यकी कन्या-संक्रान्तिपर किया जाता है, जो विश्वकर्मा-जयन्ती भी कही जाती है। वास्तुपूजन तथा गृहनिर्माणादिमें भी इनका पूजन किया जाता है। समस्त विश्वकी संरचना करनेवाले तथा पोषक देवताके रूपमें, काष्ठ एवं यन्त्रनिर्माण और प्रासादकलादिके अधिष्ठाता देवके रूपमें भक्त, साधक तथा शिल्पीलोग आज भी श्रद्धा-भावसे इनकी आराधना करते हैं।

असुरशिल्पी 'मय'

'मयशिल्पम्' नामका शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन कालसे भारतमें समादृत होता चला आ रहा है। वेदोंसे लेकर सभी इतिहास-पुराणों एवं शिल्पशास्त्रोंमें मयद्वारा निर्मित प्रथम कोटिकी एवं अत्यन्त आश्चर्यकारी शिल्पकलापूर्ण प्रासाद, नगर आदि निर्माणोंकी रोचक कथाएँ भरी पड़ी हैं। संत-महात्माजन एवं ऋषि-मुनियोंने भी उसके कला-कौशलकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। महर्षि वाल्मीकिने सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्डके तीन प्रकरणोंमें प्रायः पचास अध्यायोंके अन्तर्गत मयद्वारा निर्मित लंकापुरीके वर्णनमें विचित्र काव्य-कौशलका संनिवेश किया है, जिसका संक्षिप्त सार गोस्वामी तुलसीदासजीने

१- निर्जित्य राक्षसेन्द्रस्तं धनदं हृष्टमानसः॥ पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम्।
(वा॰ रा, उ॰ ६। ३७-३८)

२- चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च। .... ॥
अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु। नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम्॥
अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च। विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम्॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्। अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम्॥ (दुर्गासप्तशती २। २५-२८)

३- [illegible] ॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपनी मधुर एवं रम्य वाणीमें जहाँ-तहाँ— बालकाण्ड, सुन्दर-काण्ड एवं लंकाकाण्डमें वर्णित किया है। बालकाण्डमें वे लंकापुरीकी शोभाका अति संक्षिप्त परिचय देते हुए कहते हैं—

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥
सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा॥
भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥
खाई सिंधु गभीर अति चारिहु दिसि फिरि आव।
कनक कोट मनिखचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव॥

(१७८ (क))

वस्तुतः मयकी शिल्पकला अवर्णनीय है। इसलिये कविकुलचूडामणि गोस्वामीजीने भी ***'बरनि न जाइ बनाव॥'*** कहा है। महर्षि वाल्मीकि भी लंकाके वर्णनमें पूर्णतया समर्थ नहीं हो पाये हैं। इसका मूल कारण मयकी अद्भुत शिल्प-कला रही है।

सभी इतिहास-पुराणोंसे यह सिद्ध है कि लंकापुरीके पूर्वमें उपरिनिर्दिष्ट भोगावतीपुरी भी मयकी ही रचना थी। वह पातालवासियोंकी राजधानी मानी जाती है। वहाँ असुर तथा नागलोग निवास करते हैं। भोगावतीका विस्तृत विवरण विभिन्न पुराणोंके अतिरिक्त कथासरित्सागरमें भी एक स्थानपर अत्यन्त विस्तारके साथ आया है। वहाँ बतलाया गया है कि उस नगरमें उद्यान-सरोवर, वापी इतने दिव्य थे कि उसमें स्नान-विहार करनेवाले कहीं प्रविष्ट होकर कहीं अन्यत्र सुदूर पहुँच जाते थे। मयके अनेक पुत्र तथा पुत्रियोंकी अनेक रोचक, आकर्षक, भव्य एवं दिव्य कथाएँ भी इन कथा-ग्रन्थोंमें अङ्कित हैं। कथासरित्सागरमें प्रायः मयके शिल्पका उल्लेख हुआ है।

मय दैत्योंका ही नहीं, प्रत्युत देवताओं, मनुष्यों और यहाँतक कि भगवान् श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरके साथ रहकर उनकी सेवाके लिये इन्द्रप्रस्थ-नगरी एवं दिव्य सभा-भवन आदिका निर्माण करता है, जिसमें जल स्थल एवं स्थल जलकी भाँति प्रतीत होता है। दुर्योधन-जैसा शूर एवं बुद्धिमान् भी उसमें बार-बार धोखा खाकर गिर पड़ता है।

पुराणोंके अनुसार मयको कश्यप-पत्नी दनुका पुत्र माना गया है। हेमा नामकी अप्सरा इसकी पत्नी कही गयी है। कथासरित्सागरके मदन-मंचुकालम्बकके अनुसार हिमालयके पूर्वोत्तर-पार्श्वस्थित अगम्य स्थलमें हैमपुर नामका स्वनिर्मित दिव्य नगर इसका निवास-स्थान था। इसके पुत्र अनेक थे, जिनमें मायावी और दुन्दुभि अधिक विख्यात थे तथा इसके मन्दोदरी नामकी एक कन्या थी जो अत्यन्त रूपवती और जगत्-प्रसिद्ध थी।

वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डमें सीतान्वेषणमें निरत वानरोंको एक भीषण दुर्गम वनमें पथभ्रष्ट होने एवं उसमेंसे निकलनेका मार्ग न प्राप्त होनेका उल्लेख मिलता है। वहाँ कुछ आगे बढ़नेपर हनुमान्‌जीको ऋक्षविल नामक एक दिव्य स्थान मिला, जहाँ स्वयंप्रभा नामकी अप्सरा सुदीर्घकालसे तपस्यामें रत थी। उसने वानरोंके प्रश्न करनेपर यह बताया था कि वह वन एवं यह दिव्य स्थान मयके द्वारा ही निर्मित था। वह मयपत्नी हेमाकी सखी थी। हेमाने प्रसन्न होकर उसे वह वन और स्थान प्रदान कर दिया था। स्वयंप्रभामें भी मयके समान ही दिव्य शक्ति थी। उसने वानरोंसे आँखें बंद करनेको कहा और आँख बंद करते ही उन्होंने अपनेको दक्षिण उदधिके तटपर प्रकट होकर समुद्रके किनारे ही खड़े देखा। गोस्वामीजीने भी इस प्रसंगका उल्लेख किया है—

नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु कें तीरा॥

(रा० च० मा० ४। २५। ६)

—और पुनः वह स्वयंप्रभा वहाँसे दिव्य शक्तिके द्वारा चलकर तत्काल बद्रीनारायण पहुँच गयी।

सभी पुराणोंमें कमलाक्ष आदि तीन भाइयोंके क्रमशः सुवर्ण, रजत और आयसनिर्मित तीन पुरोंके समस्त दिव्य उपकरणोंके साथ निर्माण और गगनगामित्व बनानेके संदर्भमें मयके बुद्धि-प्राखर्यको ही प्रधान हेतुके रूपमें प्रदर्शित किया गया है। ये तीनों पुर सूर्य-चन्द्रमाकी भाँति आकाशमें सदा चलते रहते थे। ये कभी न एक साथ एकत्र होते थे और न इनका भेदन किया जा सकता था। इनके भेदनका एकमात्र यही छिद्र दृष्ट था कि ये तीनों पुर यदि एक साथ कदाचित् एक ही जगह एकत्र हो जायँ और कोई शक्तिशाली पुरुष एक ही बाणद्वारा इनका भेदन कर सके तो इनका विनाश हो सकता था। भगवान् शङ्करने सूर्य-चन्द्रमाको रथचक्र, ब्रह्माको सारथि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और विष्णु भगवान्‌को बाण बनाकर इन त्रिपुरोंको ध्वस्त किया था। त्रिपुर-दाहके उपरान्त भी मय बच गया था। उसे अमर माना जाता है।

वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें एक कथा विस्तारसे आती है, जिसके अनुसार मयकी पत्नी हेमा किसी कार्यसे देवलोकमें कुछ समयके लिये गयी थी। इधर मय मन्दोदरीको साथ लेकर जब उसके लिये उपयुक्त पतिकी तलाशमें निकला तो मार्गमें ही उसकी भेंट लंकाधिपति रावणसे हो गयी। मयने रावणके बल-विक्रम-ऐश्वर्यादिसे प्रभावित होकर और यह अनुमान कर कि यह समस्त विश्वका एकाधिपति शासक होगा और विशेषकर दैत्य, दानव एवं राक्षसोंका नेतृत्व करेगा, उसका विवाह रावणसे ही कर दिया। रावणकी मृत्युके पश्चात् भी मन्दोदरी विभीषणके निरीक्षणमें सुखपूर्वक राम-उपासनामें रत रहती हुई लंकाकी शासन-व्यवस्थामें पर्याप्त सहयोग देती रही।

शिल्पिशिरोमणि मय अब भी जीवित है। उसके पुत्र मायावी एवं दुन्दुभिको बालिने मार डाला तथा पुराणों एवं कथासरित्सागर आदिमें निर्दिष्ट उसकी अन्य संततियोंका भी कालक्रमसे उच्छेद हो गया। शिल्पकर्मके शिक्षार्थी एवं गवेषक मयकी अब भी आराधना कर अभीष्ट-सिद्धि-लाभ करते हैं, विशेषकर दैत्य-दानवकुलके एवं पाताल तथा नागलोकके निवासी उसके शिल्पोंका उपभोग करते हुए अब भी उसकी अनुकृतिसे लाभ उठाते हैं। शिल्पमण्डन, शिल्प-रत्न, काश्यपशिल्पम्, प्रासादमण्डन, समराङ्गणसूत्रधार, मत्स्यपुराणादि, वास्तुराजवल्लभ, वास्तुरत्नावली तथा वास्तुचिन्तामणि आदिमें भी मयके शिल्प-कौशलकी प्रशंसा करते हुए उसकी वन्दना की गयी है। दैत्य-दानवोंके अतिरिक्त देवगण भी मयकी शिल्पकलासे आकृष्ट होकर उसका सहयोग प्राप्त करते थे। इसमें संदेह नहीं कि आज भी जितनी वैमानिक शिल्प, वास्तु, रासायनिक अस्त्र-शस्त्रों, चित्रकला, उद्यानकला तथा जल-वायु-विद्युत् आदिके आविष्कार एवं प्रोन्नति हुई है, उन सबके मूलमें असुरशिल्पी मयकी प्रेरणा प्रत्यक्ष लक्षीभूत होती है।

भगवान् वृषाकपि

वैदिक देवताओंमें भगवान् वृषाकपिका विशिष्ट स्थान है। वेदों तथा पुराणेतिहासोंमें 'वृषाकपि' शब्दसे अनेक देवताओंका परिज्ञान होता है। इन्हें आदित्य, शिव, विष्णु, अग्नि, हनुमान्, रुद्र तथा इन्द्रपुत्रके रूपमें, कहीं पृथक्-पृथक् तथा कहीं समाहाररूपमें निर्दिष्ट किया गया है। विचार करनेसे प्रतीत होता है कि भगवान् वृषाकपि अत्यन्त प्रसिद्ध शिव, रुद्र, आदित्य, विष्णु, हनुमान् आदि महान् देवविभूतियोंके समाहार-स्वरूप ही दीखते हैं। इस प्रकार ये साक्षात् परब्रह्म-स्वरूप ही विदित होते हैं, क्योंकि एक परब्रह्म परमात्मा ही अपनी विशिष्ट ऐश्वर्यशक्तिसे अनेक देवताओंके रूपमें विवर्तित हुए हैं—

'महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।'
'एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'

ऋग्वेदके दशम मण्डलका ८६वाँ सूक्त 'वृषाकपिसूक्त' कहा गया है। इस सूक्तमें तेईस मन्त्र हैं, जिसमें इन्द्र, इन्द्राणी तथा वृषाकपिका परस्पर संवाद है। भाष्यकारोंने इन्हें इन्द्रपुत्रके रूपमें बताया है। आचार्य यास्कने इन्हें अन्तरिक्षस्थानीय देवताओंमें परिगणित करते हुए आदित्यपरक अर्थ किया है (निरुक्त १२।३।२७)। महाभारतमें 'वृषाकपि' शब्द विष्णुके लिये प्रयुक्त है[1] तथा अनुशासन (१५०।१२-१३)में ग्यारह रुद्रोंमें इनकी गणना की गयी है। श्रीमद्भागवतमें[2] इस शब्दका क्रमशः शिव तथा विष्णुपरक अर्थ किया गया है।

भगवान् वृषाकपिका सबसे सुविस्तृत, प्रामाणिक तथा रोचक वृत्तान्त ब्रह्मपुराणमें प्राप्त होता है। यह वर्णन ऋग्वेदके पूर्वोक्त वृषाकपि-सूक्तका ही भाष्य है।

ब्रह्मपुराणके अ० ७७ तथा ८४में एक वृषाकपि-तीर्थका वर्णन है, जो मध्यप्रदेशके अकोलाके दक्षिण गोदावरी, अञ्जना

१-'तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः।' (शान्तिपर्व ३४२।८९)
२-श्रीमद्भाग० [illegible]

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा फेना नदियोंके संगमपर पड़ता है। इस तीर्थको 'इन्द्रतीर्थ' और 'वृषाकपितीर्थ'के नामसे कहा गया है। इस वर्णनमें वृषाकपिको हनुमान् भी बताया गया है।

एक समयकी बात है, जब इन्द्रने हनुमान्जीपर वज्र चलाया तो उनकी हनु (ठुड्डी) टूट गयी और उनके मुखसे फेन निकलने लगा। वही फेन गोदावरीमें जा मिला, जो फेना नदीके नामसे विख्यात है। इसका जल गङ्गा-यमुनाके समान पवित्र माना गया है। हनुमान्जीकी एक उपमाता मार्जारी (अद्रिका) थी। वह भी उस वृषाकपितीर्थमें स्नानकर मार्जारत्व (बिल्लीकी योनि) से मुक्त हो गयी थी। इसकी विस्तृत कथा ब्रह्मपुराण (अ० ८४)में प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है—

ब्रह्मगिरिके पार्श्वमें एक अञ्जनगिरि नामका पर्वत है। उसीपर मुनिके शापसे अञ्जना नामकी एक श्रेष्ठ अप्सरा उत्पन्न हुई, जिसका केवल मुखभाग वानरका था। वह केसरीकी पत्नी हुई। इधर एक दूसरी अप्सरा भी शापभ्रष्ट होकर मुखभागसे मार्जारी हो गयी। वह भी उसी पर्वतपर केसरीकी दूसरी पत्नी हुई। उसका नाम अद्रिका था।

एक बार जब केसरी किसी कार्यसे दक्षिण समुद्रके तटपर गये थे, तब उसी समय अगस्त्यमुनि उस अञ्जन पर्वतपर आये, जहाँ अञ्जना तथा अद्रिकाने उनकी बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे पूजा की। इसपर प्रसन्न होकर भगवान् अगस्त्यने उन दोनोंसे वर माँगनेके लिये कहा। उन दोनोंने अपने लिये सर्वाधिक बली और सर्वलोकोपकारक पुत्र-प्राप्तिका वरदान माँगा। मुनिने भी 'तथास्तु' कहकर दक्षिण दिशाकी यात्रा की।

कुछ समय बीत जानेके बाद एक दिन अञ्जना और अद्रिका उसी अञ्जनपर्वतके शिखरपर गीत एवं हास्य-विनोद करती हुई आनन्दमें मग्न थीं। उसी समय वायुदेव और निर्ऋतिदेव उन्हें देखकर आनन्दित होते हुए उनके पास पहुँचे और उन्होंने देवताओंमें अपनी विशिष्टता दिखाकर विवाहका प्रस्ताव रखा। अञ्जना एवं अद्रिकाने उनके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। परिणामस्वरूप अञ्जनाके गर्भसे वायुद्वारा हनुमान् तथा अद्रिकाके गर्भसे निर्ऋतिद्वारा अद्रि नामक पिशाच उत्पन्न हुआ। थोड़े दिनों बाद उन दोनोंने अपने पुत्रोंसे कहा—'तुम लोग अगस्त्य मुनिके वरदानसे उत्पन्न हो। मुनिके शापसे हम दोनोंके मुख वानरी और मार्जारीके हो गये हैं। अतः तुमलोग हमारी शापमुक्तिका कोई उपाय करो।' इसपर अद्रिने अपने भाई हनुमान्की माता अञ्जनाको और हनुमान्ने अद्रिकी माता अद्रिकाको गोदावरी (गौतमी) में स्नान कराया, जिससे वे शापमुक्त हो गयीं। तबसे उन तीर्थोंका नाम क्रमसे अञ्जना-तीर्थ और पिशाच-तीर्थ पड़ गया। उनके पूर्वमें मार्जार, हनुमन्त और वृषाकपि-तीर्थ स्थित हुए।

ब्रह्मपुराण अध्याय १२९में भगवान् वृषाकपिका जो वृत्तान्त प्राप्त होता है, वह ऋग्वेद (१०। ८६) के वृषाकपि-सूक्तका यथावत् उपबृंहण ही है जिसका सारांश यहाँ प्रस्तुत है—

प्राचीन कालमें दैत्योंका पूर्वज हिरण्य नामका एक विख्यात असुर था। उसका महाशनि नामका महाबली पुत्र देवताओंके द्वारा सर्वथा दुर्जेय था। एक दिन महाशनि इन्द्रको पराजित कर ऐरावतसहित बाँधकर अपने पिता हिरण्यके पास ले आया। हिरण्यने अपनी पुत्रीके आग्रहपर इन्द्रको भूगर्भमें बंद कर दिया। इधर महाशनिने इन्द्रको जीतनेके पश्चात् वरुणपर चढ़ाई कर दी। वरुणने अपनी कन्या देकर उससे संधि कर ली और अपना श्रेष्ठ दिव्य महल भी उसे दे दिया[१]। परिणामस्वरूप वरुण तथा महाशनिमें मैत्री हो गयी। वरुणपुत्री वारुणीको पाकर महाशनि अत्यन्त आनन्दके साथ समय व्यतीत करने लगा।

इधर इन्द्रका अपहरण जानकर सभी देवता अत्यन्त दुःखित हो भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। इसपर भगवान् विष्णु वरुणके पास पहुँचे और उन्होंने इन्द्रकी दुर्दशाकी बात बतायी तथा उसे मुक्त करानेके लिये कहा। वरुण अपने जामाता महाशनिके पास पहुँचे। महाशनिने इनका बड़ा सम्मान किया और अत्यन्त विनीत भावसे उनके आनेका कारण पूछा। वरुणने उससे कहा—'वीरवर! तुमने जो देवेन्द्रको रसातलमें बाँधकर रखा है, उन्हें बन्धनमुक्त कर दो तथा यहाँ लाकर हमें समर्पित कर दो।' महाशनिने इन्द्रकी अनेक प्रकारसे भर्त्सना

१-कामन्दकीय [illegible]

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करते हुए उसे महात्मा वरुणको सौंप दिया। इससे इन्द्र अत्यन्त लज्जित हो गये। उन्होंने दुःखित मनसे इन्द्राणीसे पूरा समाचार बताते हुए पूछा कि मैं इस कलंकको कैसे दूर करूँ? इसपर उसने कहा—'मैं पुलोमा दैत्यकी पुत्री हूँ और यह दैत्य महाशनि मेरे चाचा हिरण्यका पुत्र है। इसकी उत्पत्ति तथा मृत्युका मुझे सम्पूर्ण रहस्य ज्ञात है। इसने ब्रह्माकी आराधनासे पराक्रम एवं शक्ति प्राप्त की है। इसके साथ ही एक बात और है, वह यह कि स्त्रियोंका स्वभाव स्त्रियाँ ही जानती हैं, इसीसे जलदेवियों और भूदेवियोंके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। आप गोदावरीके पासकी भूमिपर जाकर भगवान् शिव और विष्णुकी आराधना करें। आदि-गङ्गा गोदावरी (गौतमी) के पासकी भूमि पृथ्वीका पवित्रतम स्थान है। वहाँ भगवती गङ्गा एवं भगवान् विष्णु तथा शिवका एकत्र संगम है। वहाँ उनकी स्तुति करनेपर वे आपपर प्रसन्न होंगे। स्त्री-पुरुषका भाग आधा-आधा होता है। पुरुषद्वारा किये कर्मका फल स्त्रीको तथा स्त्रीद्वारा किये कर्मका फल पुरुषको भी प्राप्त होता है। मैं भी आपके साथ चलकर वहाँ आपके कार्यमें सहयोग करूँगी।'

तदनन्तर आचार्य बृहस्पतिके साथ शची और इन्द्र गौतमी नदीके पास पहुँचे और वहाँ उन्होंने चौदह श्लोकोंमें दिव्यभावसे शतरुद्रियके सारभूत भावोंसे भगवान् शङ्कर तथा माँ पार्वतीकी प्रार्थना की, जिससे प्रसन्न होकर तत्क्षण शिव उनके सामने प्रकट हुए और कहा कि यह कार्य मेरे द्वारा अकेले साध्य नहीं है। तुम शचीके साथ गोदावरीके दक्षिण तटपर जाकर आपस्तम्ब मुनिकी सहायतासे गदाधर विष्णुकी स्तुति करो। तदनन्तर इन्द्रने वैसा ही किया। उन्होंने फेना और गोदावरीके संगमपर विविध ऋग्वेदीय मन्त्रोंसे भगवान् विष्णुको संतुष्ट किया और वर माँगा कि हमारा सहायक एक ऐसा वीर पुरुष दें जो दैत्य-शत्रुओंका संहार कर सके। तब उन्होंने कहा कि 'वर दे दिया ऐसा समझ लो।' और उसी समय उन लोगोंके सामने ही गोदावरी गङ्गाके पवित्र जलसे एक ऐसा दिव्य पुरुष प्रकट हुआ, जो शिव-विष्णु दोनोंका सम्मिलित रूप था। उसके एक हाथमें सुदर्शनचक्र तथा दूसरे हाथमें पिनाक[1] नामक त्रिशूल था। वह वहाँसे सीधे रसातल पहुँचा और वहाँ पहुँचते ही उसने इन्द्रके शत्रु महाशनिको मार डाला। गोदावरीके जलसे उत्पन्न इन्द्रका मित्र वही दिव्य पुरुष वृषाकपि नामसे विख्यात हुआ—

दत्तमित्येव जानीहि तमुवाच जनार्दनः।
तत्राभवच्छिवस्यैव गङ्गाविष्ण्वोः प्रसादतः॥
अम्भसा पुरुषो जातः शिवविष्णुस्वरूपधृक्।
चक्रपाणिः शूलधरः स गत्वा तु रसातलम्॥
निजघान तदा दैत्यमिन्द्रशत्रुं महाशनिम्।
सखाभवत् स चेन्द्रस्य अब्जकः स वृषाकपिः॥

(ब्रह्मपुराण १२९। ९७—९९)

ये वृषाकपि आकाशमें तारेके रूपमें इन्द्रके आगे-आगे चलते हैं। एक बार इन्द्राणी इन्द्रको वृषाकपिके पीछे स्निग्ध-भावसे अनुगमित देखकर प्रणयसे कुपित-सी हो गयीं। इसपर शतक्रतु इन्द्रने इन्द्राणीको सान्त्वना देते हुए जो कुछ कहा वह वेदोंमें वृषाकपि-सूक्त (ऋग्वेद १०। ८६) के रूपमें विख्यात है, जो प्रायः सभी वेदों तथा निरुक्तमें भी प्राप्त होता है। ब्रह्मपुराण अध्याय १२९ के १०१ से लेकर ११५ तकके श्लोक इसी वृषाकपि-सूक्तकी मानो व्याख्या-स्वरूप ही हैं। उनका भाव इस प्रकार है—

हे इन्द्राणी! अपने मित्र वृषाकपिको छोड़कर मुझे हविष्य या जल कुछ भी आनन्ददायक नहीं लगता, किंतु मैं तुम्हें छोड़कर कहीं जा नहीं सकता, इसपर तुम कोई शंका न करो। तुम मेरी पतिव्रता पत्नी हो, धर्म और मन्त्रणामें सहायिका हो, तुम सत्पुत्रवती तथा कुलीना हो, तुमसे अधिक प्रिय मुझे और कौन हो सकता है? तुम्हारे ही उपदेशसे मैं यहाँ आकर भगवान् शिव और विष्णुकी प्रसन्नता प्राप्त कर सका और इन लोकविश्रुत जलोद्भव वृषाकपिदेवके प्रसादसे ही शत्रुके भीषण क्लेशसे मुक्त हुआ हूँ। इसमें तुम ही मुख्य कारण हो। स्त्री ही दोनों लोकमें कल्याण करनेवाली पुरुषकी सच्चा मित्र है, फिर वह यदि मृदुभाषिणी, कुलीना, पतिव्रता, रूपवती, सद्गुणवती तथा निरन्तर एकचित्तसे पतिका हित चाहनेवाली हो तो उस पुरुषके लिये त्रैलोक्यमें कोई वस्तु असाध्य

१-पाणिनि [illegible] के अनुसार पिनाकका मुख्य अर्थ त्रिशूल ही प्रतीत होता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं है। उसके लिये पुरुषार्थत्रयकी तो बात ही क्या ? मुक्ति भी सुलभ है—

किं न साध्यं यत्र भार्या भर्तृचित्तानुगामिनी।
दुष्करा तत्र नो मुक्तिः किं त्वर्थादित्रयं शुभे॥
जायैव परमं मित्रं लोकद्वयहितैषिणी।
सा चेत् कुलीना प्रियभाषिणी च
पतिव्रता रूपवती गुणाढ्या।
सम्पत्सु चापत्सु समानरूपा
तया ह्यसाध्यं किमिह त्रिलोक्याम्।

(ब्रह्मपुराण १२९। १०६-१०८)

इसलिये हे प्रिये! तुम्हारी ही बुद्धिकी उपजसे मेरा कल्याण हुआ है। इहलोक और परलोकमें पुत्र एवं स्त्रीके समान आर्तपुरुषके लिये और कोई औषध नहीं है तथा गोदावरी-गङ्गाके समान क्लेश-पापसे मुक्ति एवं निःश्रेयस-प्राप्तिका अन्य कोई साधन नहीं है, भगवान् शिव तथा विष्णु भी दोनों अनन्य हैं। तुम्हारी ही बुद्धिके प्रसादसे मेरा इन्द्रत्व स्थिर हुआ और जलसे सहसा उत्पन्न मित्र वृषाकपिके कारण मेरे शत्रुका संहार हुआ। यह वृषाकपितीर्थ भी अत्यन्त प्रियकर होगा। हम सभी देवताओं तथा ऋषियोंसे प्रार्थना करेंगे कि वे हमारी भावनाओंका अनुमोदन करें। यह 'इन्द्रेश्वर' तथा 'वृषाकपितीर्थ' गोदावरी नदीके दोनों तटोंपर स्थित होंगे। यहाँ भगवान् शिव और विष्णु दण्डकवनको पवित्र करते हुए एकत्र रहेंगे। यहाँ जो भी स्नान करेगा, वह मुक्तिका भागी होगा और अपने मातृ-पितृ-कुलके पाँच-पाँच पुरुषोंको मुक्त कर देगा। जो यहाँ थोड़ा भी तिल एवं उड़दका दान करेंगे, वह उनके लिये अक्षय सुख, सौभाग्य, कामनाप्रद तथा मोक्षदायक होगा। यह वृषाकपि-आख्यान भी धन, यश, आयु, आरोग्य और पुण्यको बढ़ानेवाला तथा शिव-विष्णुके रहस्यका ज्ञान करानेवाला है। इन्द्र इन्द्राणीसे ऐसा कह ही रहे थे कि उसी समय ब्रह्मादि देवताओं तथा ऋषियोंने भी वहाँ पहुँचकर एक स्वरसे कहा कि 'ऐसा ही होगा।' यहाँ गोदावरीके उत्तर तटपर सात हजार तथा दक्षिण तटपर ग्यारह दूसरे तीर्थ हैं। किंतु इन सभी तीर्थोंके मध्यमें हृदयस्वरूप यह वृषाकपि-तीर्थ (अब्जक-तीर्थ) है, जो मुनियोंके द्वारा गोदावरीका हृदय कहा गया है और यहाँ ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव निरन्तर निवास करते हैं—

अब्जकं हृदयं प्रोक्तं गोदावर्या मुनीश्वरैः।
विश्रामस्थानमीशस्य विष्णोर्ब्रह्मण एव च॥

(ब्रह्मपुराण १२९। १२७)

इस प्रकार भगवान् वृषाकपि अनेक देवताओंके सम्मिलित तेजोराशिस्वरूप हैं। शिव, विष्णु तथा हनुमान् एवं सूर्य आदि अनेक रूपोंसे उनकी उपासना कर यथेष्ट लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इनकी पत्नी 'वृषाकपायी' वेदोंमें अत्यन्त महिमामण्डित हैं। वे मुख्य रूपसे ऐश्वर्य एवं संततिकी अधिष्ठात्री देवी कही गयी हैं (ऋग्वेद १०। ८६। १३)। इन्हें लक्ष्मी तथा गौरी भी कहा गया है।

आधिदैविक जगत्‌के देवता—अष्ट लोकपाल

(श्रीशिवनाथजी दुबे, एम्० काम्०, एम्०ए०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

शास्त्रोंने प्रत्येक पदार्थकी दृश्य जड-सत्ताकी नियामिका शक्तिको चेतनाधिष्ठित स्वीकार किया है, यही चेतन-शक्ति उस पदार्थकी अधिदैव-शक्ति है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थके अधिष्ठातृ-देवता होते हैं। त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) एवं उनकी शक्तियाँ (सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा) और सूर्य तथा गणेश तो भगवत्स्वरूप ही हैं। इसके अतिरिक्त द्युलोक-निवासी ३३ करोड़ देवता इनसे अलग हैं।

सभी कोशों तथा लक्षण-ग्रन्थोंके अनुसार अष्ट या दश दिक्पाल ही लोकपाल माने जाते हैं और वे हैं—पूर्व दिशाके इन्द्र, अग्निकोणके अग्निदेव, दक्षिण दिशाके यमराज, नैर्ऋत्यकोणके राक्षसराज निर्ऋति, पश्चिम दिशाके वरुण, वायुकोणके वायुदेवता, उत्तर दिशाके कुबेर और ईशानकोणके ईशान शिव। जहाँ दश दिक्पाल माने गये हैं, वहाँ ऊर्ध्वलोकके ब्रह्मा एवं अधोलोकके अनन्त (शेष) कहे गये हैं। इन अष्ट लोकपालोंका संक्षिप्त विवरण इस रूपमें है—

१-इन्द्र—एक सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला चक्रवर्ती सम्राट् किसी मन्वन्तरमें इन्द्र होता है। वर्तमान कल्पके छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। यह सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस मन्वन्तरमें पुरन्दर देवराज इन्द्र हैं। स्वर्गाधिपतिका यह पद प्रत्येक मन्वन्तरमें परिवर्तित होता रहता है। इन्द्रको शतक्रतु भी कहते हैं। देवराज इन्द्रकी धर्मपत्नी शची दैत्यराज पुलोमाकी कन्या हैं। जयन्त एवं जयन्ती नामक इनके एक पुत्र तथा एक पुत्री हैं।

जल-वृष्टिसे ही जगत्‌का पोषण और जीवन चलता है। देवराज इन्द्र वर्षाके अधिपति कहे जाते हैं। वैदिक कालमें इन्द्रके निमित्त यज्ञ हुआ करते थे। श्रुतियोंमें देवराज इन्द्रकी स्तुतियाँ भी हैं। ये मातलिद्वारा चलाये गये हरित वर्णके अश्वोंसे जुते हुए रथपर विराजमान हैं। त्रेतायुगमें वानरराज बाली तथा द्वापरमें अर्जुन इन्हींके अंशसे पैदा हुए थे। श्रुतियोंमें देवराज इन्द्रकी आराधना अनादिकालसे चली आ रही है। इन्होंने दीर्घकालतक संयमित रहकर ब्रह्माजीसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। मानव-जगत्‌को अध्यात्म-ज्ञानकी प्राप्ति इन्हींकी अनुकम्पासे हुई थी। आयुर्वेदके आदि उपदेष्टा देवराज इन्द्र ही हैं। भगवान् धन्वन्तरिने इन्हींसे आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त किया था। इस जगत्‌में अनेकानेक शास्त्रोंका प्रवर्तन देवराज इन्द्रद्वारा ही हुआ है। कतिपय आचार्योंके अनुसार देवराज इन्द्रके पदकी प्राप्ति कर्मके द्वारा ही होती है।

२-अग्नि—पूर्व तथा दक्षिण दिशाके मध्यका कोण 'अग्निकोण' कहलाता है। उसके दिक्पाल अग्निदेव हैं। अग्निदेव धर्मकी पत्नी वसुभार्यासे उत्पन्न हुए हैं। इनकी पत्नी स्वाहा हैं। इनका वाहन है मेढ़ा । शक्ति एवं अक्षसूत्र इनके आयुध हैं। पीतलोचन, अङ्गारवर्ण एवं द्विमुख अग्निदेव यज्ञोंमें देवताओंकी आहुतियाँ ग्रहण करते हैं। अग्निदेवके अनेक रूप हैं। समस्त जीवधारियोंके अंदर ये जठराग्नि बनकर पाचनक्रिया सम्पन्न करते हैं। वनमें दावाग्नि-रूपसे एवं सूर्यमण्डलमें दिव्याग्निरूपसे विद्यमान हैं। समुद्रमें ये वडवाग्नि-रूपसे रहा करते हैं। मेघोंमें विद्युत् ही अग्नि-शक्ति होती है। जगत्‌में यही प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सामान्य अग्नि है। पुराणोंमें इनके ५१ तथा १०१ भेद बताये गये हैं।

तेज, प्रकाश, गति, उष्णता, पाचन इत्यादि एक ही महाशक्तिके विभिन्न कार्य हैं। अग्निदेव इस शक्तिके अधिदेवता हैं। अग्निदेवकी उपासनासे तेज, शक्ति, कान्ति और सुन्दर स्वास्थ्यकी उपलब्धि होती है। ये ज्ञानस्वरूप हैं। इनकी उपदिष्ट पुराण 'अग्निपुराण' कहलाता है।

व्यावहारिक जीवनमें प्रयोग होनेवाले अग्निके भी पाँच रूप हैं। ब्राह्म, प्राजापत्य, गार्हस्थ्य, दक्षिणाग्नि एवं क्रव्यादाग्नि। यज्ञमें ब्राह्म-अग्नि अरणिमन्थनसे मन्त्रके माध्यमसे उत्पन्न होते हैं। ये अग्नि आहवनीय हैं। प्राजापत्याग्नि ब्रह्मचारीको अग्निहोत्र-हेतु उपनयनके समयपर प्राप्त होते हैं। वानप्रस्थाश्रमतक इनकी आराधना, रक्षा एवं इनमें नित्यप्रति हवन करना उसका परम कर्तव्य है। पाणिग्रहण-संस्कारके उपरान्त गार्हस्थ्याग्नि कुलमें प्रतिष्ठित होते हैं। गृहस्थ-जीवनके समस्त शुभकार्य (यज्ञादि) इन्हींसे सुसम्पन्न होते हैं। चिताग्निको दक्षिणाग्नि कहते हैं। शरीरकी अन्तिम आहुति इन्हींमें ही दी जाती है। विपत्तियोंके शमनके लिये यज्ञमण्डपके बाहर दक्षिण-भागमें यह अग्नि प्रतिष्ठित होते हैं। क्रव्यादाग्नि त्याज्य है।

३-यमराज—विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञाका विवाह सूर्यदेवसे हुआ था। यमराज इन्हीं दोनोंकी संतान हैं। यमराज जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके निर्णायक हैं। ये दक्षिण दिशाके लोकपाल हैं। इनकी संयमनीपुरी उन प्राणियोंके लिये, जो अशुभकर्मा हैं, अत्यन्त भयप्रद है। यम, मृत्यु, अन्तक, धर्मराज, काल, वैवस्वत, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, नील, दध्न, वृकोदर, परमेष्ठी, चित्र तथा चित्रगुप्त—इन चतुर्दश नामोंसे इन महिषवाहन दण्डधारीकी आराधना की जाती है। इनका तर्पण भी इन्हीं नामोंसे किया जाता है।

चार द्वारों, सात तोरणों तथा पुष्पोदका, वैवस्वती आदि सुरम्य नदियोंसे पूर्ण अपनी संयमनी पुरीमें पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर दिशाके द्वारसे प्रवेश करनेवाले पुण्यात्मा प्राणियोंको यमराज सौम्य-रूपमें अपने महाप्रासादमें रत्नासनपर दर्शन देते हैं। दक्षिण द्वारसे प्रविष्ट होनेवाले पापी प्राणियोंको वे तप्त-लौहद्वार तथा पूय, शोणित एवं क्रूर पशुओंसे पूर्ण वैतरणी नदी पार करनेपर प्राप्त होते हैं। द्वारके अंदर आनेपर वे अत्यन्त विस्तीर्ण नेत्रोंवाले, धूम्रवर्ण, ज्वालामय रोमधारी, प्रलय-कालीन मेघके समान गर्जन करनेवाले, तीक्ष्ण प्रज्वलित दन्तयुक्त, वक्र-भृकुटि, भयंकरतम वेषमें यमराजको घबड़ाकर देखते हैं। वहाँ घोरतर पशु, मूर्तिमान् व्याधियाँ एवं यमदूत उपस्थित रहते हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दीपावलीसे पूर्वके दिन यमदीप जलाकर तथा यमकी आराधना करके प्राणी उनकी कृपाका भाजन बनता है। निर्णेता यमराज प्राणियोंसे सदैव शुभ कर्मोंकी ही अपेक्षा करते हैं। जीवको दण्डके द्वारा शुद्ध करना ही इनका मुख्य कार्य है।

४-निर्ऋति—राक्षसराज निर्ऋति नैर्ऋत्यकोणके अधिपति दिक्पाल हैं। निर्ऋति-लोकमें दो प्रकारके प्राणियोंका निवास है—अपुण्यशील तथा पुण्यशील। जो म्लेच्छ-चाण्डालादि होकर भी तस्करी, हिंसा, जूआ तथा पर-पीडनसे अपनेको दूर रखते हैं और जो राक्षस-योनिमें उत्पन्न होकर भी हिंसादि नहीं करते, उन्हें पुण्यात्माओंके भोग इस लोकमें सुलभ होते हैं।

पूर्वजन्ममें दिक्पति निर्ऋति विन्ध्यक्षेत्रमें शबरोंके अधिपति पिंगाक्ष थे। पिंगाक्ष सदैव यात्रियोंकी हिंसक जीवोंसे रक्षा करते एवं दस्युओंसे बचाते थे। एक बार वे केवल अकेले ही जंगलमें विचरण कर रहे थे। पदयात्रियोंका एक झुंड उनके नामका स्मरण करके 'त्राहि, त्राहि' कर रहा था। वहाँ पहुँचनेपर यह विदित हुआ कि पिंगाक्षके चाचा दस्युदलको लेकर यात्रियोंको आतङ्कित कर रहे हैं। पिंगाक्षने इसपर रोक लगायी। फलस्वरूप दस्युओंसे उनका भयंकर संग्राम छिड़ गया। संग्राममें वे मारे गये। परोपकारके लिये शरीर-त्याग करके वे लोकपाल हुए।

५-वरुण—सर्वप्रथम समस्त सुरासुरोंपर विजय प्राप्त करके जलाधीश श्रीवरुणदेवने ही राजसूय यज्ञ किया था। श्रीवरुण जलके अधिपति तथा पश्चिम दिशाके लोकपाल हैं। इनकी रत्नपुरी विभावरी पश्चिमी समुद्रगर्भमें है। पाश इनका प्रमुख अस्त्र है। श्रीवरुणके पुत्र श्रीपुष्कर इनके दक्षिण-भागमें सदैव विद्यमान रहते हैं। ये जल-निवासी एवं जलाधिपति हैं। श्रुतियोंमें इनकी स्तुतियाँ हैं।

६-वायुदेव—वायुदेव जगत्‌के प्राण हैं। यदि कुछ क्षणोंतक वायुका प्रवाह बंद हो जाय तो संसार नष्ट हो सकता है। ये प्राणियोंके शरीरसे लेकर सम्पूर्ण आकाश, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वीको व्याप्त कर स्थित रहते हैं। मध्वसम्प्रदायमें इनकी उपासना विशेष रूपसे प्रचलित है। मध्वसम्प्रदायके अनुयायी इन्हें वायुका अवतार मानते हैं। वायुसे ही मेघ उत्पन्न होते हैं, जिससे वृष्टि होती है। शीतल, मन्द तथा सुगन्धित रूपमें प्रवाहित होकर ये देवगणोंसहित सम्पूर्ण सृष्टिको प्रसन्न रखते हैं। ये सबसे बलवान् कहे गये हैं। झंझावातसे समुद्रोंको प्रकम्पित करना तथा पर्वत-शिखरोंको गिरा देना इनके लिये अत्यन्त सरल कार्य है। महाबली हनुमान् एवं भीमसेन इन्हींके अंश-सम्भूत पुत्र कहे गये हैं।

विद्वानोंके अनुसार प्रवाह-वैभिन्न्यसे इनके शताधिक भेद हैं। वायुदेवके आधिपत्यके कारण ही पश्चिमोत्तरके मध्यकी दिशा वायव्यकोण कही गयी है। भगवान्‌को लोकस्वरूप कहते हुए अर्जुन गीतामें सर्वप्रथम **'वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः'** कहते हुए वायुदेवका ही उल्लेख करते हैं। इसलिये वायुदेव परमात्मस्वरूप हैं। ये दिखायी नहीं देते, स्पर्शसे ही अपना परिचय देते हैं। इनमें विशिष्ट देवत्व एवं शक्ति है। सम्पूर्ण वायुपुराण इन्हींके द्वारा कहा गया है।

७-कुबेर—महर्षि पुलस्त्यके पुत्र मुनिवर विश्रवाने श्रीभरद्वाजजीकी पुत्री इलविलाका पाणिग्रहण किया था। उसीसे कुबेरका जन्म हुआ। ब्रह्माजीने इन्हें सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका स्वामी बनाया। अपने तपोबलसे ये उत्तर दिशाके लोकपाल हुए। कैलासके संनिकट इनकी अलकापुरी है। तीन चरणोंवाले, अष्टदन्त, तुन्दिल-शरीर, श्वेतवर्ण एवं गदाधारी कुबेर अपनी सत्तर योजन विस्तीर्ण वैश्रवणी सभामें विद्यमान हैं। इनके पुत्र मणिग्रीव एवं नलकूबर इनके निकट स्थित रहते हैं। इनके अनुचर यक्ष निरन्तर श्रीकुबेरकी सेवामें लगे रहते हैं।

पृथ्वीमें जो भी भण्डार है, सबके अधिपति कुबेर ही हैं। इनकी महती कृपासे ही मानवको भूगर्भस्थित धन (निधि) की प्राप्ति होती है। श्रीकुबेरजी मनुष्यकी तपस्याके अनुरूप कोषका प्रादुर्भाव अथवा तिरोभाव करते हैं। देवाधिदेव महादेव इन्हें अपना सखा मानते हैं।

८-ईशान—ये भगवान् शिवके ही एक भेद हैं। तत्पुरुष, अघोर आदि पाँच भेदोंमें ये विशेष उल्लेख्य हैं। इनके आधिपत्यके कारण ही उस अधिष्ठित दिशाका नाम ईशानकोण है। इनके विषयमें विशेष जानकारीके लिये लिङ्गपुराण, शिवपुराण एवं ब्रह्माण्डपुराण आदिको देखना चाहिये।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जलाधिनाथ भगवान् वरुण

[गताङ्क पृ॰ सं॰ ४१४ से आगे]

वरुणलोकका वर्णन

स्कन्दपुराण, काशी-खण्ड, अ॰१२में वरुणलोकके विस्तृत वर्णनमें बताया गया है कि यह लोक अत्यन्त दिव्य एवं आनन्दके उपकरणोंसे सम्पन्न है। अपने उपार्जित शुद्ध धनके द्वारा वापी, कूप, तडागादिका निर्माण करनेवाले निर्जल देशोंमें प्रपा (पौंसला) या जलकी व्यवस्था करनेवाले, दूसरेके क्लेश-तापोंको अपहरण करनेवाले, अर्थियोंको धन, छत्र, कमण्डलु आदि प्रदान करनेवाले, धर्मघटका दान करनेवाले, चन्दन, कर्पूर, इत्र मिले हुए सुगन्धित जल प्रदान करनेवाले, अश्वत्थको सींचनेवाले, मार्गमें छायादार वृक्षोंको लगानेवाले, मार्गमें धर्मशाला आदि निर्माण करने-करानेवाले, ग्रीष्ममें मयूरपिच्छरचित चित्र-विचित्र, तालवृत्त तथा पंखा प्रदान करनेवाले, ब्राह्मणोंको ईखके खेत दान करनेवाले और गोरस, इक्षुरस तथा गो-महिषियोंका दान करनेवाले, देवालयोंमें जलकी व्यवस्था करनेवाले तथा भयभीत व्यक्तियोंको अभय प्रदान करनेवाले पुण्यात्मा वरुणलोकको प्राप्त करते हैं और यहाँ निवास कर उल्लसित होते हैं। जो लोग कण्ठपाशबद्ध दुःखी प्राणियोंको पाशमुक्त करते हैं, वे पाशपाणि भगवान् वरुणके लोकमें निर्भय होकर निवास करते हैं। जो नौका आदि उपायोंके द्वारा बड़ी-बड़ी नदियोंमें यात्रियोंके संतरणका प्रयत्न करते हैं तथा दुःख-समुद्रसे दुःखी प्राणियोंका उद्धार करते हैं अथवा पवित्र नदियोंके किनारे शिला आदिसे सुबद्ध घाटोंका प्रबन्ध करते हैं, वे भी यहाँ आकर सुखपूर्वक निवास करते हैं।

वरुणका दिक्पालत्व

देवाधिदेव वरुण पश्चिम दिशाके अधिपति (दिक्पाल) सभी जलाशयोंके एकमात्र स्वामी जलचर जीवोंके अधिष्ठाता, सभी सत्कर्मोंके साक्षी और श्रेष्ठ फलदाता कहे गये हैं, इनकी उत्पत्तिके विषयमें स्कन्दपुराण, काशी-खण्ड (अ॰ १२) में एक सुन्दर कथा आती है—

प्रजापति कर्दमका शुचिष्मान् नामका एक शील-विनयसम्पन्न, धर्म, धैर्य, स्थैर्य तथा माधुर्य आदि गुणोंसे अलंकृत सुन्दर पुत्र था। वह एक बार अपने साथी बालकोंके साथ 'अच्छोद' सरोवरमें[1] स्नान करने गया। वहाँ जलक्रीडामें संलग्न ही था कि एक शिशुमार (सूँस) नामक जलचर जीवने उसका अपहरण कर लिया। मुनिपुत्रके जलमें लुप्त होते ही उसके साथियोंने उसके पितासे तत्काल आकर यह दुःखद संवाद सुनाया। उस समय कर्दम मुनि शिव-पूजामें बैठे हुए निश्चल, निर्विकल्प-समाधिमें लीन थे और अपने बालककी इस अप्रिय घटनाको सुनकर उनका मन लेशमात्र भी शिवके ध्यानसे अलग नहीं हुआ, अपितु वे और अत्यधिक समाहिततापूर्वक त्रिलोचन सर्वज्ञ भगवान् शङ्करके अङ्गोंका ध्यान, अनुशीलन करने लगे। उन्होंने उस समय शिवके शरीरमें चौदह भुवनोंको देखा तथा उन्हींके शरीरके अन्तर्गत विविध ब्रह्माण्डों और उनके अन्तर्गत चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, तारागण, पर्वत, सरित्-सागर, सरोवर, वृक्ष, अरण्य एवं अनेक देवी-देवताओं और उनकी पुरियोंको भी देखा। उन्हें तत्तद् ब्रह्माण्डोंमें अनेक वापी, कूप, तडाग, आराम, कुल्या, पुष्करिणियाँ भी दीखीं, जिनमेंसे एक सरोवरमें बहुतसे जलक्रीडापरायण मुनिकुमार भी दिखायी दिये। वे मज्जन-उन्मज्जन करते हुए धारा-यन्त्रोंसे एक दूसरेपर जल छिड़कते हुए तथा हाथोंद्वारा जलको पीटकर शब्द करते हुए खेल रहे थे। उन्होंने उन्हीं बालकोंमेंसे एकको शिशुमार (सूँस) के द्वारा अपहृत होते हुए भी समाधिमें ही देखा, जो अत्यन्त दुःखसे विह्वल हो रहा था। जबतक किसी जलदेवीने उस जलचर-जीवसे उस बालकको सहसा झटककर छीन लिया और उसे समुद्रदेवको समर्पित कर दिया, तबतक कोई रुद्ररूपधारी पुरुष हाथमें त्रिशूल लिये हुए जोरोंसे भर्त्सना कर सरित्पति समुद्रसे कहने लगा—'रे समुद्र! शिवभक्त प्रजापति महाभाग कर्दमके इस बालकको शिवकी शक्तिको बिना समझे हुए ही इतनी देर अपने पास कैसे रखे हुए हो।' इतना सुनते

१-यह कश्मीरका सुप्रसिद्ध झील है, जिसका वर्तमान नाम अच्छावत है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही समुद्र अत्यन्त भयभीत हो गया और उसने बालकको अत्यन्त बहुमूल्य रत्नोंसे अलंकृतकर तथा उसके साथ ही उस शिशुमारको भी रस्सियोंसे बाँधकर भगवान् शङ्करके चरणोंमें समर्पित कर दिया और उनसे निवेदन किया कि 'हे अनाथनाथ ! हे भगवान् विश्वनाथ ! इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। यह दुष्ट शिशुमार ही इसे पकड़कर ले जा रहा था। आपके गणके द्वारा सूचना मिलनेपर मैं इस अपराधी शिशुमारके साथ मुनि बालकको लेकर यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।' आप कृपापूर्वक इसे ग्रहण करें। इसपर थोड़ी देरके पश्चात् शङ्करकी आज्ञासे उनके एक गणने उस बालकको कर्दमके पास लाकर खड़ा कर दिया और कहा कि 'वत्स ! तुम अपने घर जाओ।' इन सारी बातोंको कर्दमने ध्यान-समाधिमें देखा और सुना। और जबतक वे अपनी आँखोंको खोलकर सामने देखते हैं, तो बगलमें आभूषणोंसे अलंकृत जलसंसिक्त काकपक्षी अपने बालकको प्रणाम करते देखा और बगलमें ही उस शिशुमारको भी देखा। बालकके अपने पिताको प्रणाम करनेपर उन्होंने बार-बार उसके मस्तकको सूँघा और पुनः जन्म पाये हुएके समान उसे देखा। कुछ समयके बाद उस बालकने अपने पिताकी आज्ञा लेकर वाराणसीपुरीमें प्रस्थान किया और वहाँ एक शिवलिङ्गकी स्थापना कर दीर्घकालतक घोर तपस्या की, भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर बालकसे वर माँगनेको कहा। इसपर उसने सभी जलराशियों एवं जलचरोंका स्वामित्व माँगा। भगवान् शङ्करने तत्काल उसे वरुणके पदपर अभिषिक्त कर दिया। वह सभी सरित्-सरोवर, समुद्र और रत्नोंका स्वामी बना। साथ ही वह पाशपाणि—पश्चिम दिशाका भी अधिपति हुआ[1]। भगवान् शंकरने पुनः कहा—तुम्हारे द्वारा स्थापित इस वरुणेश्वर-लिंग, जो मणिकर्णिकेश्वरके नैर्ऋत्यकोणपर स्थित है, की आराधना करेगा, उसका सारा अज्ञान दूर हो जायगा। वरुणेश्वर शिवके भक्तोंको किसी प्रकारका भय या संताप नहीं होगा और उनकी अग्नि या जल आदिमें मृत्यु नहीं होगी एवं उन्हें जलोदर रोग भी नहीं होगा तथा प्यास भी नहीं सतायेगी। नीरस पदार्थ भी वरुणेश्वरके स्मरणसे सरस हो जाते हैं।' ऐसा कहकर भगवान् शंकर अपने गणोंके साथ वहीं अन्तर्हित हो गये और शुचिष्मान् नामक वह बालक ही वरुणलोकका अधिपति हुआ।

भगवान् वरुणदेवकी पूजा-उपासना

अति प्राचीन कालसे ही भगवान् वरुणदेवकी पूजा-उपासना होती आयी है। प्रायः वैदिक कर्मकाण्ड-प्रक्रियामें उपनयन, विवाहादि-संस्कारों, संवत्सरके मुख्य व्रतोत्सवों, प्रतिष्ठा आदि कर्मों तथा यज्ञादि-अनुष्ठानों—सभी माङ्गलिक कर्मोंमें जलाधिनायक भगवान् वरुणदेवका पूजन किया जाता है। मुख्य रूपसे वरुण-कलशमें तथा जलयात्रा आदिके समय भगवान् वरुणका आवाहन और विविध उपचारोंसे उन्हें प्रसन्न किया जाता है। वृष्टिके अधिनायक तथा समस्त भुवनोंके स्वामी होनेसे वे अपने भक्तोंकी सभी कामनाओंकी पूर्ति करते हैं और अन्तमें अपने धामको प्राप्त कराते हैं। प्रत्येक शुभकर्मोंमें उनका आवाहन-पूजन, वन्दन विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है—

नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय
सुश्वेतहाराय सुमङ्गलाय।
सुपाशहस्ताय झषासनाय
जलाधिनाथाय नमो नमस्ते॥

वे दिक्पति हैं, अतः दिक्पालपूजनके समय और अनावृष्टिके समय भी उनकी विशेष पूजा की जाती है। उनके आवाहन, ध्यान आदिके मन्त्र, स्तोत्र आदि बड़े भावपूर्ण एवं रमणीय हैं, जिसमें कहा गया है कि 'मैं देवाधिदेव जलाधिपति वरुणदेवका आवाहन करता हूँ, वे मकररूपी रथयुक्त वाहनपर विराजमान हैं और उनका स्वरूप हिमालयके शिखरके समान है। उनकी भुजाएँ बड़ी हैं और वे उनमें पाश धारण किये हुए हैं। उनके चारों ओर सभी जलचर जीव स्थित हैं। इस प्रकारके स्वरूपवाले हे वरुणदेव ! आप यहाँ पधारिये और प्रसन्न होइये—

आवाहयामि देवेशं वरुणं जलनायकम्।
कुम्भीरथसमायुक्तं श्वेताद्रिशिखरोपमम्॥

१-अभ्यषिञ्चत तं तत्र वारुणे परमे पदे॥
रत्नानामब्धिजातानामब्धीनां सरितामपि। सरसां पल्वलानाञ्च वाप्याम्बुस्रोतसां पुनः॥
जलाशयानां सर्वेषां प्रतीच्याश्चापि वै दिशः। अधीश्वरः पाशपाणिर्भव सर्वामरप्रिय॥ (स्कन्द, काशी॰ १२। ९३—९५)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाशहस्तं महाबाहुं यादोगणसमन्वितम्।
आगच्छ वरुण त्वं हि क्षेत्रेऽस्मिन् संनिधौ भव ॥

शतपथ, तैत्तिरीय आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा 'हयशीर्ष पाञ्चरात्र' नामक ग्रन्थमें इनकी साङ्गोपाङ्ग उपासना-पद्धति विस्तारसे निर्दिष्ट है।

वरुणप्रघास

वरुण-प्रघास वरुणदेवतासे सम्बद्ध एक विशिष्ट यज्ञ है, जो चातुर्मास्य-यज्ञोंमें दूसरा यज्ञ है। यह श्रावण शुक्ला पञ्चमी या आषाढ़ी पूर्णिमाको वरुणके पाशोंसे मुक्त होनेके उद्देश्यसे अनुष्ठित होता है। यह एक अहीनयाग है, जो एक ही दिनमें पूरा किया जाता है। इसमें जौका सत्तू खाकर रहनेका विधान है। इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला जलमें नहीं डूबता तथा जलोदर आदि रोग नहीं होते। इस यज्ञका विशेष विवरण तैत्तिरीयसंहिता, शतपथ आदि ब्राह्मणग्रन्थों तथा सांख्यायन, आश्वलायन आदि श्रौतसूत्रोंमें विस्तारसे वर्णित है।

वरुण अपने उपासकों और भक्तोंके प्रति करुणापूर्ण एवं स्निग्ध-भाव रखते हैं। उनके भक्तगण उनकी कृपासे उनके निवास-स्थानपर पहुँचकर उनके साथ मधुर सरस एवं स्पृहणीय वार्तालाप करते हैं[1] और कभी-कभी उन्हें अपने प्रज्ञाचक्षुसे देखते भी हैं[2]।

आगम-ग्रन्थोंमें अनावृष्टि एवं अतिवृष्टिके निवारण तथा सुख, शान्ति प्राप्त करने, सभी उपद्रवोंके नाश और अभ्युदय-प्राप्तिके लिये 'वारुणी ऋचा' द्वारा हवन आदिका विधान किया गया है। साथ ही सूर्यदेवके शतभिषा नक्षत्रमें आनेपर इस ऋचाका जप करनेसे रोग एवं ऋणका नाश और वशीकरण आदि अभीष्टोंकी सिद्धि होती है। यह 'वारुणी-ऋचा' इस प्रकार है—

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत् पाशं वरुणो मुमोचत्।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

(ऋ० ७।८८।७)

इस अनुष्ठान-क्रममें भगवान् वरुणदेवका ध्यान निम्न मन्त्रसे किया जाना चाहिये—

चन्द्रप्रभं पङ्कजसंनिषण्णं
पाशाङ्कुशाभीतिवरं दधानम्।
मुक्ताविभूषाञ्चितसर्वगात्रं
ध्यायेत् प्रसन्नं वरुणं विभूत्यै ॥

(शारदातिलक २३।५७)

इस प्रकार भगवान् वरुणदेवकी अनेक रूपोंमें उपासना की जाती है। इनकी महिमा अपार है। वेदके षडङ्गोंमें निरुक्तके तथा साहित्यमें करुणरसके अधिदेवता भगवान् वरुण ही कहे गये हैं। वे अपने भक्तोंको अनुग्रह-प्रदानके साथ-साथ अपनी भक्ति तथा सायुज्य-मुक्ति भी प्रदान करते हैं। अस्तु, वे सर्वदा पूज्य, वन्द्य एवं स्तुत्य हैं। (समाप्त)

श्रीरघुनाथजीके चरण-कञ्ज

तूल बारूद रिंच मूल तें बिलाय जात, पावक चिनगारी के रंच ढिंग आने तें।
घोर तमपुंज मार्तण्ड की मरीचि पाय, काम जर जात ज्यों, त्रिनैन नैन ठाने तें॥
बैजनाथ ध्यायें, रघुनाथ के चरण-कंज, मिटत त्रिताप ज्यों, प्रभाव हिय आने तें।
नामके लिये तें अघ ऐसें मिट जात जैसें, काग उड़ जात है कमान-बान ताने तें॥

—श्रीविभूतिनाथ जगदीशशरणजी विलगइयाँ 'मधुप' द्विवेदी

१- श्रीमद्भागवत, तृतीय स्कन्धके कपिलोपाख्यानमें ऋग्वेदके इस वरुण-सूक्तका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। वहाँ भगवान् कपिलदेव अपनी मातासे कहते हैं कि मेरे प्रिय भक्त मेरी उपासनाके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते, सायुज्य मुक्ति भी नहीं चाहते। वे परस्पर मिलकर मेरे पराक्रमका गान करते हैं, मेरे रुचिर रूपका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं और मेरे साथ मधुर, स्पृहणीय वार्तालाप करते हैं। (भाग० ३।२५।३५-३६)।

२- ऋग्वेद [illegible]

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीभैरव एवं उनकी उपासना

(पं॰ श्रीसुरेशचन्द्रजी ठाकुर)

भारतीय धर्मपरम्परामें श्रीभैरव एक विशिष्ट देवता हैं। इनका एक स्वतन्त्र आगम है, जो भैरवागमके नामसे प्रसिद्ध है। भैरवको भगवान् श्रीविष्णु तथा शङ्करके समकक्ष माना गया है। विष्णुस्वरूप होकर भी ये साक्षात् शिवके दूसरे रूप माने जाते हैं। शिवपुराणमें कहा है कि '**भैरवः पूर्णरूपो हि शङ्करस्य परात्मनः।**'

आगमों तथा पुराणोंमें भैरव देवताके अनेक चरित्र प्राप्त होते हैं। उनके आविर्भावसे सम्बद्ध उपलब्ध अनेक आख्यानोंमेंसे एक मुख्य आख्यान यह है कि दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें योगाग्निद्वारा सतीके देहोत्सर्गकी घटनाको नारदद्वारा सुनकर भगवान् शङ्करको सहसा तीव्र क्षोभ उत्पन्न हो गया और उन्होंने बड़े जोरसे अपनी जटा पृथ्वीपर पटकी तभी एक भीषण रव करता हुआ आकाशको स्पर्श करनेवाला भीषण दिव्य पुरुष प्रकट हो गया और कहने लगा कि आप मुझे क्या आज्ञा देते हैं? फिर शिवके कथनानुसार उसने दक्ष-यज्ञको भङ्ग कर दिया। वही पुरुष भैरव देवताके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसलिये ये शङ्करके स्वरूप एवं उनके पुत्र—इन दोनों रूपोंमें प्रसिद्ध हैं।

पुराणों तथा तान्त्रिक ग्रन्थोंमें भैरव देवताका अनेक रूपोंमें वर्णन आता है। इनके प्रमुख आठ नाम इस प्रकार हैं—

१-असिताङ्ग भैरव, २-रुरु भैरव, ३-चण्ड भैरव, ४-क्रोध भैरव, ५-उन्मत्त भैरव, ६-कपालि भैरव, ७-भीषण भैरव और ८-संहार भैरव। इसके अतिरिक्त शारदातिलक तथा बृहज्ज्योतिषार्णव आदिमें श्रीवटुक भैरवकी उपासना-पद्धति प्राप्त होती है। वटुक भैरवका पूजन सामान्य देवताओंकी भाँति ही किया जाता है। 'सप्तविंशतिरहस्यम्' में तीन वटुक भैरवोंके नाम तथा मन्त्रका वर्णन भी है, इनके नाम इस प्रकार हैं—१-स्कन्द वटुक, २-चित्र वटुक, ३-विरञ्चि वटुक।

'रुद्रयामलतन्त्र' तन्त्र-शास्त्रका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, इसमें ६४ भैरवोंका वर्णन है—

१-असिताङ्ग, २-विशालाक्ष, ३-मार्तण्ड, ४-मोदकप्रिय, ५-स्वच्छन्द, ६-विघ्नसंतुष्ट, ७-खेचर, ८-सचराचर, ९-रुरु, १०-क्रोडदंष्ट्र, ११-जटाधर, १२-विश्वरूप, १३-विरूपाक्ष, १४-नानारूपधर, १५-पर, १६-वज्रहस्त, १७-महाकाय, १८-चण्ड, १९-प्रलयान्तक, २०-भूमिकम्प, २१-नीलकण्ठ, २२-विष्णु, २३-कुलपालक, २४-मुण्डपाल, २५-कामपाल, २६-क्रोध, २७-पिङ्गलेक्षण, २८-अभ्ररूप, २९-धरापाल, ३०-कुटिल, ३१-मन्त्रनायक, ३२-रुद्र, ३३-पितामह, ३४-उन्मत्त, ३५-वटुनायक, ३६-शङ्कर, ३७-भूतवेताल, ३८-त्रिनेत्र, ३९-त्रिपुरान्तक, ४०-वरद, ४१-पर्वतावास, ४२-कपाल, ४३-शशिभूषण, ४४-हस्तिचर्माम्बरधर, ४५-योगीश, ४६-ब्रह्मराक्षस, ४७-सर्वज्ञ, ४८-सर्वदेवेश, ४९-सर्वभूतहृदिस्थित, ५०-भीषण, ५१-भयहर, ५२-सर्वज्ञ, ५३-कालाग्नि, ५४-महारौद्र, ५५-दक्षिण, ५६-मुखर, ५७-अस्थिर, ५८-संहार, ५९-अतिरिक्ताङ्ग, ६०-कालाग्नि, ६१-प्रियंकर, ६२-घोरनाद, ६३-विशालाक्ष और ६४-दक्षसंस्थितयोगीश भैरव।

काली आदि दस महाविद्याओंके पृथक्-पृथक् दस भैरव इस प्रकार हैं—

१-महाकाल, २-अक्षोभ्य, ३-ललितेश्वर, ४-क्रोध भैरव, ५-महादेव भैरव, ६-कालभैरव, ७-नारायण भैरव, ८-मतङ्ग सदाशिव भैरव, ९-मृत्युञ्जय भैरव और १०-वटुक भैरव।

वटुक भैरव देवताके सात्त्विक, राजस एवं तामस तीनों प्रकारके ध्यान तन्त्र-ग्रन्थोंमें वर्णित हैं। उनका सात्त्विक ध्यान शारदातिलक (२०।५०) में इस प्रकार है—

वन्दे बालं स्फटिकसदृशं कुन्तलोल्लासिवक्त्रं
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः किंकिणीनूपुराद्यैः।
दीप्ताकारं विशदवदनं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रं
हस्ताब्जाभ्यां वटुकमनिशं शूलदण्डौ दधानम्॥

अत्यन्त प्रभावपूर्ण शरीरयुक्त, प्रसन्न एवं घुँघराले केशसे उल्लसित विस्तृत मुखमण्डलयुक्त और तीन नेत्रोंसे युक्त, दोनों करकमलोंमें क्रमशः त्रिशूल और दण्ड धारण किये हुए, अनुपम एवं दिव्य मणियोंसे निर्मित किंकिणीसे सुशोभित कटिवाले और मधुर ध्वनियुक्त नूपुरोंसे विभूषित पैरवाले तथा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्फटिकके समान उज्ज्वल वर्णवाले बालस्वरूप वटुक भैरवकी हम अहर्निश वन्दना करते हैं।

श्रीवटुकके प्रातःस्मरणीय दस नाम

कपाली कुण्डली भीमो भैरवो भीमविक्रमः।
व्यालोपवीती कवची शूली शूरः शिवप्रियः॥
एतानि दश नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
भैरवी यातना न स्याद् भयं क्वापि न जायते॥

श्रीभैरव देवताके कपाली, कुण्डली, भीम, भैरव, भीमविक्रम, व्यालोपवीती, कवची, शूली, शूर तथा शिवप्रिय—इन दस नामोंका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, उसे न तो कोई भैरवी यातना होती है और न कोई सांसारिक भय होता है।

आगमग्रन्थोंमें इनके विभिन्न प्रकारके शतनाम, सहस्रनाम, कवच, स्तवराज आदि अनेक स्तोत्र प्राप्त होते हैं। देवी-पूजा आदिमें भी भैरवकी पूजा होती है। नवरात्रोंमें दुर्गापूजन तथा कुमारिका-पूजनके साथ वटुक भैरवकी पूजा होती है तथा प्रायः देवी एवं शिवमन्दिरोंमें इनका विग्रह अवश्य स्थापित रहता है। काशी-प्रयाग आदि मुख्य तीर्थोंके ये क्षेत्रपाल एवं नगरपाल माने गये हैं। वहाँ निर्विघ्न निवासके लिये इनका दर्शन-पूजन आवश्यक माना गया है।
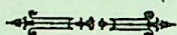
विभिन्न दर्शनोंके अनुसार देवाधिदेव परमात्माका स्वरूप

(राष्ट्रपतिसम्मानित डॉ० श्रीमहाप्रभुलालजी गोस्वामी)

[गताङ्क पृ० सं० ४३५ से आगे]

ईश्वरके साथ जीवका सम्बन्ध

न्यायवैशेषिक सिद्धान्तमें जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही विभु अर्थात् व्यापक पदार्थ हैं। जीवाश्रित धर्म और अधर्म ईश्वरसे अधिष्ठित होकर ही सुख और दुःखका जनक होता है।

धर्म और अधर्म अचेतन पदार्थ हैं। अचेतन चेतनाधिष्ठित होकर ही कार्यका जनक होता है। जैसे मिट्टी, दण्ड, चक्र आदि अचेतन पदार्थ चेतन कुम्भकारके द्वारा अधिष्ठित होकर ही घट आदि कार्योंके जनक होते हैं, इसी प्रकार धर्माधर्म भी ईश्वराधिष्ठित होकर ही कार्यका जनक होता है। जीवाश्रित धर्मादिका अधिष्ठाता ईश्वर तभी हो सकता है जब जीवके साथ ईश्वरका कोई सम्बन्ध रहे, किंतु इन दोनोंमें कोई सम्बन्ध ही सम्भावित नहीं है (न्या० वा० पृ० ९५२)।

इसके उत्तरमें कहा जाता है कि जीवात्माके साथ ईश्वरका अजसंयोग अर्थात् नित्य-संयोग सम्बन्ध है। न्यायमें आकाश, दिक्, काल, जीवात्मा और ईश्वर—ये विभु अर्थात् सर्वगत द्रव्य हैं। सभी मूर्त द्रव्योंके साथ संयुक्त द्रव्यको विभुद्रव्य कहा जाता है। किंतु वार्तिककारके अनुसार सभी द्रव्योंके साथ संयुक्त द्रव्य ही सर्वव्यापी या विभुद्रव्य है। मात्र सर्वमूर्तद्रव्य-संयोगीको ही विभु नहीं कहते। विभुद्रव्योंके साथ विभुद्रव्योंका अजसंयोग [illegible] नित्य संयोग सम्बन्ध है। अतः धर्माधर्मका अधिष्ठाता ईश्वर होता है। जो आचार्य अजसंयोग दोनोंमें नहीं मानते हैं वे संयुक्त-संयोग सम्बन्ध मानते हैं। न्यायमतमें मन अणुपरिमाण और मूर्तद्रव्य है। विभुद्रव्य मूर्तद्रव्योंके साथ संयुक्त रहता है। इसलिये मन जैसे जीवके साथ संयुक्त है वैसे ही ईश्वरके साथ भी संयुक्त है। अतः जीवात्मसंयुक्त मनःसंयोग ईश्वरमें है एवं ईश्वरसंयुक्त मनःसंयोग जीवात्मामें है। जीवात्माओंका मनःसमुदाय ईश्वरके साथ संयुक्त है। अतः सम्बद्ध-सम्बन्ध जीवात्माका ईश्वरके साथ है और इसके द्वारा वह जीवात्मामें समवेत धर्माधर्मका अधिष्ठाता है। (न्या० वा० पृ० ९५७)।

वाचस्पति मिश्रने अजसंयोगमें आचार्योंकी सम्मति न देखकर परम्परा-सम्बन्ध स्वीकार किया है—संयुक्तसंयोगि-समवाय सम्बन्ध माना है। परमाणु आदि ईश्वरके साथ संयुक्त है। ईश्वर-संयुक्त परमाणु आदिके साथ जीवात्मा भी संयुक्त है और जीवात्मामें धर्माधर्म समवेत है, अतः ईश्वरके साथ धर्माधर्मका संयुक्त संयोगिसमवाय है। ईश्वरसंयुक्त परमाणु आदिके संयोगी जीवात्मामें धर्माधर्मका समवाय है, अर्थात् ईश्वरसंयुक्त जीवात्मामें धर्माधर्म समवाय-सम्बन्धी है। '**संयुक्तसमवायो वा क्षेत्रज्ञेन ईश्वरस्य संयोगात् अजसंयोगस्यापि उपपादितत्वात्**' (न्या० वा० पृ० ९५७)।

अद्वैत वेदान्तमें—

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीव ईशो विशुद्धाचित् तथा जीवेशयोर्भिदा ।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः ॥

इस रूपमें जीव, ईश्वर, विशुद्ध ब्रह्म, जीव और ईशका भेद अविद्या और चित्का सम्बन्ध—ये छः अनादि हैं।

जयन्त भट्टने न्यायमञ्जरीमें ईश्वरमें नित्य सुख भी स्वीकार किया है, इसका विशेष उद्देश्य अपवर्गकी दशामें नित्य आनन्दकी उपलब्धि है, अन्यथा न्याय और बौद्ध-मतमें अपवर्गमें आत्मा पाषाणप्राय हो जायगा। क्योंकि बौद्धोंने विज्ञान-संततिके उच्छेदको ही निर्वाण माना है। इसलिये उनका निर्वाण चिन्त्य है। इसीलिये सुखाभिव्यक्तिका समर्थन किया है—

किन्तु त्रैलोक्यनिर्माणनिपुणः परमेश्वरः ।
स देवः परमो ज्ञाता नित्यानन्दः कृपान्वितः ॥

(न्यायमं० १०, पृ० १७५)

उपसंहारमें यह सूचित करना आवश्यक है कि ईश्वर सर्वात्मक कुम्भकारसे विलक्षण अधिष्ठान आदिकी अपेक्षा बिना ही जगत्का निर्माता है। उस देवको अपने चित्तका समर्पण या तन्मयताकी प्राप्ति या तद्रूप सम्पत्ति ही दर्शनका परम लक्ष्य है। इस प्रसङ्गमें सर्वात्मक वेदके इस मन्त्रको प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया गया है—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥

(ऋक्० १०।८१।३)

परमेश्वरके द्वारा निर्मित इस जगत्की सृष्टिमें क्या अधिष्ठान और उपादान है? इसीका उत्तर इस मन्त्रमें है।

जगत्का स्रष्टा परमेश्वर सर्वात्मक है, इसलिये अधिष्ठान और उपादानकी अपेक्षाके बिना ही जगत्की सृष्टि करनेमें वह समर्थ है। परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त-चक्षु, सर्वत्र व्याप्त-मुख, सर्वत्र व्याप्त-बाहु, सर्वत्र व्याप्त-पाद् है। ऐसा व्यापक परमेश्वर अपने मध्यमें ही तीनों लोकोंकी सृष्टि करता है, दोनों भुजाओंके द्वारा द्युलोकमें भलीभाँति प्रेरित करता है और गमनशील चरणोंके द्वारा पृथ्वीको भलीभाँति प्रेरित करता है। ईश्वर-सृष्ट चौदह भुवनस्वरूप जगत्में स्वप्रकाश एक देवता अवस्थित है।

भगवद्गीताके त्रयोदश अध्यायके १३वें श्लोकमें भी कहा गया है—

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

पूर्वोक्त '**विश्वतश्चक्षुरुत०**' इस मन्त्रमें प्रथमसे सर्वज्ञत्व कहा है, चक्षुसे दृष्टिकी प्रतीति है, द्वितीयसे सर्ववक्तृत्व अर्थात् प्राणिमात्रके हितका उपदेशक परमेश्वर ही है, ऐसा कहा गया है। मुखके द्वारा वाणीकी प्रतीति है। '**विश्वतो बाहुः**' इस तृतीय विशेषणसे परमेश्वरको सभी कार्योंका अदृष्ट सहकारी कहा गया है, अतः वह सर्वकर्ता है। '**विश्वतस्पात्**' इस चतुर्थ विशेषणके द्वारा ईश्वर सर्वत्र व्याप्त कहा गया है। इन विशेषणोंके द्वारा स्थूल नेत्र, बाहु और पाद नहीं कहा गया है, क्योंकि वह अशरीरी अपाणिपाद है। '**सं बाहुभ्यां धमति**' इस विशेषणसे बाहु शब्दसे धर्म और अधर्म कहा गया है। धर्म और अधर्म ही सभी कार्योंका बीज है। '**सं पतत्रैः**' इसके द्वारा परमाणु या प्रकृति आरम्भक द्रव्यको कहा गया है। ईश्वर अधिष्ठाता है और धर्माधर्मरूप अदृष्ट परमाणु, प्रकृति आदि ईश्वरका अधिष्ठेय है। चेतन ईश्वरसे अधिष्ठित होकर ही अचेतन कार्यका जनक होता है।

'देव' शब्दसे प्रकाशात्मक परमेश्वर और 'एक' शब्दसे उसको अनादि, अनन्त और अद्वय कहा गया है। (समाप्त)

सध्रीचीनान् वः समनसः कृणोम्येकश्नुष्टीन् संवननेन सहृदः ।
देवा इवेदमृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सुसमितिर्वो अस्तु ॥

समान गतिवाले आप सबको सममनस्क बनाता हूँ, जिससे आप पारस्परिक प्रेमसे समान भावोंके साथ एक अग्रणीका अनुसरण करें। देव जिस प्रकार समान चित्तसे अमृतकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सायं और प्रातः आप सबकी उत्तम समिति हो। (अथर्ववेद, पैप्पलादशाखा)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीमद्भगवद्गीतामें देवताओंका स्वरूप

(श्रीरामकृष्णजी मिश्र, पी०सी०एस०)

देवताओंके मूल आकर ग्रन्थ वेद हैं। देवता तथा उनकी स्तुतियाँ ही वेदमन्त्रोंका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय हैं। शौनक ऋषिद्वारा प्रणीत 'बृहद्देवता' विशेषरूपसे ऋग्वेदमें वर्णित देवताओंका एक सर्वमान्य परिचायक ग्रन्थ है तथा यास्काचार्यरचित 'निरुक्त' में वैदिक देवता-सम्बन्धी शब्दोंकी व्युत्पत्तियाँ दी गयी हैं। इन ग्रन्थोंमें देवताओंको पृथ्वी-स्थानीय, अन्तरिक्ष-स्थानीय तथा द्यु-स्थानीय देवता—इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है। पृथ्वी-स्थानीय देवताओंमें अग्निका, अन्तरिक्ष-स्थानीय देवताओंमें इन्द्रका तथा द्यु-स्थानीय देवताओंमें विष्णु तथा सूर्यका स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। पहले उनकी तैंतीस कोटियाँ मानी गयीं। पुनः अक्षपाद (गौतम) ऋषिने परिवार, वर्ग, विभूति, मार्ग, लिङ्ग, नित्य, निमित्त, कर्म, गण, ग्राम, वस्तु, शरीर एवं प्रकृति आदि क्रमोंके आधारपर देवताओंकी संख्या तैंतीस करोड़ बतायी है। इन्हीं देवताओंकी कृपासे जगत्‌का समस्त कार्य संचालित होता है तथा उपासक धन-धान्य, पुत्र-संतति, सुख-शान्ति और ऋद्धि-समृद्धि एवं मोक्षतककी अभिलाषा करते हैं।

वैदिक संहिताओंमें देवताओंका त्रिविध रूप भी मिलता है। उनका प्रथम आधिभौतिक या स्थूल रूप है, जिसका नेत्रोंसे साक्षात्कार किया जा सकता है, दूसरा आधिदैविक रूप है, जो सूक्ष्म एवं अव्यक्त होनेके कारण इन्द्रियोंसे अतीत माना गया है। उनका तीसरा आध्यात्मिक रूप सभी देवताओंका समुच्चय है, जिसमें सभी देवता एक ही मूल सत्तामें स्थित हैं तथा उसी सत्ताके विकासमात्र हैं। उदाहरणस्वरूप ऋग्वेदमें महर्षि प्रजापति परमेष्ठी जगत्‌के मूलतत्त्वकी व्याख्या करते हुए कहते हैं—

'आनीद वातं स्वधया तदेकम्' (ऋग्वेद १०।११९।२)

अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भमें केवल एक ही वस्तु थी, जो वायुके बिना ही अपनी शक्तिसे श्वास लेती थी। इस विचारधाराका स्रोत प्रज्ञामूलक है, जो अपनी प्रतिभाके द्वारा तत्त्वोंका विवेचन करता हुआ एक ही सत्तापर स्थिर हो जाता है। निरुक्तकारने इसी अद्वैत-भावको निरुक्तके दैवतकाण्डमें इस प्रकार व्यक्त किया है—

'महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।'
'एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'

(निरुक्त, दैवतकाण्ड ७।४।१)

पुराणों एवं धर्मशास्त्रोंमें वर्णित देवयोनियोंके ज्ञानके लिये श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धका सातवाँ अध्याय द्रष्टव्य है, जिसमें इन्द्रकी सभामें सभी प्रकारके देवताओंको एक साथ उपस्थित दिखाया गया है।

इन्द्रः ································ ।
मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥
विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः।
सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥
विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः।
निषेव्यमाणो मघवान् स्तूयमानश्च भारत ॥

भाव यह कि उनकी सभामें मरुद्गण, वसु, रुद्र, आदित्य, ऋभुगण, विश्वेदेव, साध्यगण, अश्विनीकुमार, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, ब्रह्मवादी मुनि, विद्याधर, अप्सरा, किन्नर, खगदेव तथा नागदेव उपस्थित थे। अमरकोषमें भी देवताओंको गणदेवता तथा देवयोनि नामक दो वर्गोंमें विभाजित किया गया है—

आदित्यविश्ववसवस्तुषिताभास्वरानिलाः।
महाराजिकसाध्याश्च रुद्राश्च गणदेवताः ॥
विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥

इस विभाजनमें आदित्य, विश्वेदेव, वसु, तुषित, आभास्वर, अनिल, महाराजिक, साध्यगण तथा रुद्र 'गणदेवता' हैं एवं विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध तथा भूत 'देवयोनियाँ' हैं।

देवताओंमें पञ्चदेव अर्थात् विष्णु, शिव, सूर्य, शक्ति, गणपति तथा पुनः त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्करकी सत्ता स्वीकार की गयी है। इन सब देवताओंके परे एक ऐसी सार्वभौमिक सत्ता भी है, जो अपने-आपमें यथावत् स्थित रहती है। सृष्टिका सर्जन, पालन तथा संहार भी वही शक्ति करती है तथा आवश्यकतानुसार ईश्वर-रूपसे अंशावतार, पूर्णावतार, आवेशावतार एवं कलावतार लेती है। यही

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकमात्र शक्ति सभी देवताओंको एक सूत्रमें बाँधे रहती है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें देवोपासना

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा श्रीमद्भगवद्गीतामें ज्ञान, कर्म, उपासना, योग, ध्यान, सांख्य, वेदान्तदर्शन, धर्म, आत्मा एवं अन्यान्य आध्यात्मिक विषयोंका अत्यन्त सारगर्भित उपदेश अर्जुनको दिया गया है। इसलिये गीता सर्वशास्त्रमयी कही गयी है। उसमें देवोपासना संक्षिप्त किंतु ओजस्वी शैलीमें वर्णित है। वैदिक, पौराणिक एवं अन्य शास्त्रोंके समान श्रीमद्भगवद्गीतामें भी देवताओंकी विभिन्न कोटियोंको स्वीकार किया गया है। देवताओंका वर्णन एक तो उनके विशिष्ट नाम-क्रमसे, दूसरा भगवद्विभूति-क्रमसे तथा तीसरा उनके समूह-क्रमसे दिया गया है।

निम्नाङ्कित श्लोकोंमें देवताओंके नामोंका वर्णन द्रष्टव्य है—

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

उपर्युक्त श्लोकोंमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्र तथा प्रजापति आदिका उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त **'देवानामस्मि वासवः'** में इन्द्रका, **'रुद्राणां शङ्करश्चास्मि'** में शिवका, **'वित्तेशो यक्षरक्षसाम्'** में कुबेरका, **'पुरोधसां बृहस्पतिम्'**, में बृहस्पतिका, **'सेनानीनामहं स्कन्दः'** में स्वामिकार्तिकका, **'देवर्षीणां नारदः'** में नारदका, **'गन्धर्वाणां चित्ररथः'** में चित्ररथका, **'सिद्धानां कपिलो मुनिः'** में कपिलका, **'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः'** में कामदेवका, **'सर्पाणामस्मि वासुकिः'** में वासुकिका, **'अनन्तश्चास्मि नागानाम्'** में अनन्त (शेषनाग) का, **'पितॄणामर्यमा चास्मि'** में अर्यमाका, **'रामः शस्त्रभृतामहम्'** में रामका, **'स्रोतसामस्मि जाह्नवी'** में गङ्गाका तथा **'गायत्री छन्दसामहम्'** में गायत्री एवं कुछ अन्य विशिष्ट देवताओंका भी विभूतियोंके निर्देशनमें वर्णन हुआ है।

ग्यारहवें अध्यायके निम्न श्लोकमें गण-देवताओंका उल्लेख है—

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे॥

पूर्वोक्त प्रकरणोंमें परिपठित देवगणोंका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

१-रुद्र—श्रीमद्भागवत (६।६।१७-१८) में वर्णन आया है कि दक्षकी कन्या सरूपा तथा भूतसे करोड़ों रुद्रगण उत्पन्न हुए। उनमेंसे ११ प्रसिद्ध हैं जो इस प्रकार हैं—रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान्।

हरिवंशपुराणके हरिवंशपर्वमें हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व तथा कपाली—ये ११ रुद्र बतलाये गये हैं।

२-आदित्य—दक्ष-कन्या अदिति तथा कश्यपसे १२ आदित्योंका प्रादुर्भाव हुआ, जिनके नाम हैं— विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र तथा त्रिविक्रम ।

३-वसुगण—श्रीमद्भागवत (६।६।११) के अनुसार धर्मकी वसु नामक पत्नीसे वसुगणोंका आविर्भाव हुआ, इसी कारण ये 'वसु' कहलाते हैं। संख्यामें ये आठ हैं—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु एवं विभावसु। महाभारतके अनुसार इनके नाम—धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष एवं प्रभास हैं (१।६६।१८)।

४-साध्यगण—दक्षकी पुत्री साध्या तथा धर्मसे बारह साध्यगण उत्पन्न हुए, जिन्हें क्रमशः मन, अनुमन्ता, प्राण, नर, यान, चित्ति, हय, नय, हंस, नारायण, प्रभव तथा विभु कहा गया है—

मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरो यानश्च वीर्यवान्॥
चित्तिर्हयो नयश्चैव हंसो नारायणस्तथा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रभवोऽथ विभुश्चैव साध्या द्वादश जज्ञिरे॥

(वायु०, उत्तर० ५। १५-१६)

५-विश्वेदेव—धर्म तथा दक्ष-पुत्री विश्वासे उत्पन्न देवोंको विश्वेदेव कहा गया है। वायुपुराणके अनुसार ये १० हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—क्रतु, दक्ष, श्रव, सत्य, काल, काम, धुनि, कुरुवान्, प्रभवान् तथा रोचमान—

क्रतुर्दक्षः श्रवः सत्यः कालः कामो धुनिस्तथा॥
कुरुवान् प्रभवांश्चैव रोचमानश्च ते दश।

(वायु०, उत्तर० ५। ३१-३२)

६-अश्विनीकुमार—बडवारूपमें स्थित संज्ञा तथा विवस्वान्‌से दोनों अश्विनीकुमार—नासत्य तथा दस्र उत्पन्न हुए। इन्हें देवताओंका वैद्य माना जाता है।

७-मरुद्‌गण—प्रजापति कश्यप तथा दक्ष-कन्या दितिसे ४९ मरुद्‌गण उत्पन्न हुए। वे दितिके पुत्र होनेपर भी इन्द्रके सहचररूपमें देवता माने गये हैं। वे सत्त्वज्योति, आदित्य, सत्यज्योति, तिर्यग्ज्योति, सज्ज्योति एवं ज्योतिष्मान् आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

८-उष्मपा या पितृगण—मनुस्मृतिके तीसरे अध्यायके २३७वें श्लोकमें कहा गया है कि पितृगण उष्ण (गरम) अन्न ही ग्रहण करते हैं। अतः उन्हें उष्मपा कहा गया है। दक्ष-कन्या स्वधा तथा अङ्गिरा ऋषिसे सात पितृगणोंकी उत्पत्ति हुई। जिनके नाम हैं—कव्यवाह, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद्। इनमें अन्तिम तीन पितृगण अमूर्त अर्थात् आकाररहित सूक्ष्मरूपमें स्थित होते हैं।

कव्यवाहोऽनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदस्त्रयश्चान्त्या ह्यमूर्तयः॥

(शिवपुराण, विद्येश्वर० ६३। २)

९-गन्धर्व—प्रजापति कश्यप तथा दक्षसुता मुनिसे मौनेय नामक गन्धर्वों तथा प्राधासे प्राधेयसंज्ञक गंधर्वोंकी उत्पत्ति हुई। गन्धर्वोंकी संख्या बहुत है। जिनमें मौनेय-गन्धर्वोंमें—भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, वरुण आदि तथा प्राधेय-गन्धर्वोंमें—सिद्ध, पूर्ण, बर्हि, पूर्णायु, ब्रह्मचारी तथा रतिगुण आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके राजा विश्वावसु चित्ररथ हैं।

१०-अप्सरा—गन्धर्वोंके समान अप्सराओंकी उत्पत्तिके भी कई स्रोत हैं। भागवतके छठे स्कन्धके छठे अध्यायमें उन्हें दक्ष-कन्या मुनि तथा कश्यपसे और अन्यत्र समुद्र-मन्थनके समय समुद्रसे उत्पन्न होना बताया गया है। गन्धर्व गायन एवं वादन करते हैं तथा अप्सराएँ नृत्य एवं अभिनय करती हैं। स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें कुल अप्सराएँ तीन करोड़ पचास लाख बतायी गयी हैं, इनमें क्रतुस्थला, पुञ्जिकस्थला, मेनका, रम्भा, उर्वशी, प्रम्लोचा, अनुम्लोचा, तिलोत्तमा, पूर्वचित्ति तथा घृताची आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

११-यक्ष—यक्षोंकी उत्पत्ति महर्षि कश्यपकी पत्नी खसासे मानी गयी है। यक्षोंके अधिपति कुबेर हैं।

किन्नर तथा किंपुरुष भी प्रायः यक्षोंके साथ रहते हैं। उनका मुख घोड़ेके समान तथा शरीर देवताओंके समान होता है।

१२-असुर—'असु'का अर्थ प्राण तथा 'र' का अर्थ 'लानेवाला' या 'वाला' होता है। इस प्रकार यह विशेषण वरुण तथा दूसरे देवोंके लिये व्यवहृत हुआ है। परवर्ती युगमें असुर देवोंके शत्रुके रूपमें प्रसिद्ध हो गये। अतः देवताओंके विरोधी दैत्य, दानव तथा राक्षसोंको भी असुर कहते हैं।

१३-सिद्ध—वायुपुराणके अनुसार एक प्रकारके देवता जिनकी संख्या ८८,००० है। सूर्यके उत्तर तथा सप्तर्षियोंके दक्षिणमें इनका स्थान है। ये एक कल्पके लिये अमर माने जाते हैं तथा सब प्रकारकी स्थूल एवं सूक्ष्म शक्तियोंसे युक्त होते हैं।

१४-देवर्षि—देवलोकमें निवास करना, भूत-भविष्यत् एवं वर्तमानका ज्ञान होना तथा सर्वदा सत्य बोलना आदि देवर्षिके लक्षण हैं। वे अपनी सिद्धियों तथा ऐश्वर्यके बलपर सभी लोकोंमें आवागमन कर सकते हैं।

ऋषन्ति देवान् यस्मात्ते तस्माद्देवर्षयः स्मृताः॥

(वायु०, पूर्वार्ध ६१। ८५)

धर्मके दोनों पुत्र नर तथा नारायण, क्रतुके पुत्र बालखिल्य, पुलह ऋषिके पुत्र कर्दम, पर्वत, नारद तथा कश्यपके दोनों पुत्र असित और वत्सर आदि देवर्षि कहलाते हैं।

१५-उरग या नागदेव—दक्ष-कन्या कद्रू तथा ताक्ष्र्य नामधारी कश्यपसे नाग उत्पन्न हुए तथा विनतासे गरुड आदि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पन्न हुए जो पक्षिदेवोंकी श्रेणीमें आते हैं।

इसके अतिरिक्त ऋभुगण, विद्याधर, चारण, गुह्यक, महाराजिक, किन्नर, किंपुरुष आदि देवतागण भी देव-श्रेणियोंमें आते हैं।

देवयोनियोंकी प्राप्तिका आधार कर्मफल

अनादिकालसे जीवोंके जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्मफलको दृष्टिगत रखते हुए सभी योनियोंकी रचना हुई है। गीतामें कर्मोंका विभाजन कई प्रकारसे किया गया है। जैसे कर्म-विकर्म-अकर्म, इष्ट-अनिष्ट-मिश्र, सात्त्विक-राजस-तामस, विहित-निषिद्ध, प्रारब्ध-क्रियमाण-संचित, कायिक-वाचिक-मानसिक तथा शुभ-अशुभ-शुभाशुभ। त्रिगुणात्मिका मायाके कार्यरूप पाँच महाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार, दस इन्द्रियाँ तथा उनके पाँच विषयोंके समुदायका नाम गुण-विभाग और इनकी पारस्परिक चेष्टाएँ कर्म-विभाग हैं। गुण एवं कर्म-विभागके आधारपर सृष्टिक्रम चलता रहता है। प्रकृतिके इन्हीं गुणोंसे मोहित हुए पुरुष कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। सात्त्विक, राजस तथा तामस गुणोंके आधारपर उनके द्वारा साधन भी किया जाता है। सात्त्विक प्राणी देवोंकी, राजस यक्ष एवं राक्षसोंकी तथा तामस लोग भूत-प्रेतोंकी उपासना करते हैं। तदनुसार उन्हें ऊर्ध्व, मध्य अथवा अधोलोकोंकी प्राप्ति होती है (गीता १७।४, १४।१८)।

देवताओंकी पूजाका कारण

श्रीमद्भगवद्गीतामें देवोपासनाके कई कारण दिये गये हैं। गीताके तीसरे अध्यायमें बताया गया है कि सृष्टिकी रचनाके बाद प्रजापति ब्रह्माने प्रजाको कर्तव्य-शिक्षा देते हुए कहा कि प्रजाजन सात्त्विक यज्ञोंके द्वारा देवताओंको संतुष्ट करें तथा देवताओंका भी कर्तव्य है कि वे भी प्रजाजनकी आवश्यकताओंको पूर्ण करके उन्हें उन्नत एवं संतुष्ट करें। इस प्रकार यज्ञके माध्यमसे पारस्परिक कल्याणका मार्ग प्रशस्त किया गया है। (१०-११)।

अपने कर्म, स्वभाव तथा प्रकृतिके अनुसार कुछ सात्त्विक एवं तत्त्वज्ञानी लोग परम पुरुषार्थ—मोक्षको प्राप्त करनेका साधन करते हैं। सामान्य जन कामनाओंके उद्देश्यसे देवोपासना करते हैं। इनके भी दो भेद हैं। जिन सकामी भक्तजनोंकी सांसारिक भोगोंमें आसक्ति होती है तथा जो स्त्री, पुत्र, धन, भवन एवं मानकी कामना करते हैं, उनको इन वस्तुओंकी प्राप्ति देवताओंके यजन-पूजनके माध्यमसे शीघ्र हो जाती है—

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥

(४।१२)

कुछ लोग उत्कृष्ट लोकोंकी प्राप्तिके लिये देवोपासना करते हैं। वे इसके लिये शास्त्रविहित यज्ञों एवं अन्यान्य सात्त्विक कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। अन्तमें उन्हें उन लोकोंकी प्राप्ति भी हो जाती है—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥

(गीता ९।२०)

इस प्रकारके भक्तजन देवत्वको तो प्राप्त कर लेते हैं, परंतु वे कर्म देवताकी कोटिमें आते हैं अर्थात् मानवयोनिमें उनके द्वारा किये गये पुण्योंके क्षीण होनेपर वे पुनः मृत्युलोकको प्राप्त करते हैं तथा उनका यह स्वर्ग-मृत्युलोकके आवागमनका चक्र निरन्तर चलता रहता है—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते॥

(गीता ९।२१)

जो भक्तजन परम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्षके लिये परमसत्ताका निष्काम-भावसे यजन करते हैं, पर किसी कारण-विशेषसे उनका वह भगवत्प्राप्तियोग पूर्ण नहीं हो पाता है, ऐसे लोगोंको मोक्ष न मिलनेके कारण उनके द्वारा अर्जित पुण्यका भोग करनेके लिये वे देवयोनिको प्राप्त होते हैं तथा स्वर्गके भोगोंको भोगनेके बाद धर्मनिष्ठ ऐश्वर्यशाली व्यक्तियोंके यहाँ उनका जन्म होता है—

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥

(गीता ६।४१)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वदेवनमस्कारः केशवम्प्रति गच्छति

पुरुषार्थ-चतुष्टयमें प्रथम श्रेणीके सात्त्विक लोग भगवान् श्रीकृष्णको ही परमेश्वर मानते हैं तथा वे उनके प्रति अपनी अनन्य भक्ति रखते हुए सायुज्यको प्राप्त कर लेते हैं। भगवान् कृष्णको सभी देवताओंका अधिपति माननेके कुछ कारण इस प्रकार हैं—

भगवान् श्रीकृष्ण सर्वदेवाधिपति हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णको देव, देवदेव, विश्वेश्वर, विश्वरूप, विष्णु, आदिदेव, पुरुषोत्तम, परमेश्वर, प्रभु, देववर, विश्वमूर्ति, लोकपिता, देवेश तथा केशव आदि नामोंसे सम्बोधित किया गया है—

भगवान्के दिव्य रूपको देखनेकी अभिलाषा देवता भी अपने हृदयमें रखते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः॥

(गीता ११ । ५२)

ब्रह्मा तथा शङ्कर आदि ईश्वरकोटिके देवताओं तथा आजानसंज्ञक कल्पान्तस्थायी देवताओंको भी विश्वरूप-दर्शनमें दिखाया गया है। इससे उनकी परमेश्वरता सिद्ध होती है।

भगवान् स्वयं सम्पूर्ण जगत्के आधारभूत कारण हैं। उन्हें सभी भूतप्राणियोंके लिये गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृद्, उत्पत्ति, प्रलय-स्थान, निधान तथा अविनाशी बीज माना गया है—

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥

(गीता ९ । १८)

अपनी प्रकृति कर्म तथा स्वभावानुसार सकाम भक्तजन जब अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं तो भगवान् श्रीकृष्ण ही उन देवताओंमें उन भक्तोंकी निष्ठाको अटल करते हैं। उन भक्तोंको उस विशिष्ट देवताके प्रति श्रद्धासे जो फल प्राप्त होता है, वह भी भगवान्के द्वारा उस देवताके माध्यमसे दिया जाता है।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्॥

(गीता ७ । २०—२२)

अन्य देवताओंका पूजन भी भगवत्पूजन ही है। गीतामें **'वासुदेवः सर्वमिति'** कहा गया है। जो सकाम भक्तजन अन्य देवताओंका पूजन एवं उपासना करते हैं, वे भी प्रकारान्तरसे भगवान्का ही पूजन करते हैं, क्योंकि भगवान् स्वयं यज्ञ हैं तथा यज्ञोंके स्वामी एवं उपभोक्ता भी वे स्वयं ही हैं।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥

(गीता ९ । १६)

देवताओंकी सकाम उपासनासे देवलोककी प्राप्ति हो सकती है। परंतु निष्काम उपासनासे प्राणी भगवान्का सांनिध्य प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। परमगति या मोक्षकी प्राप्ति भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना तथा ज्ञानसे हो सकती है। सम्पूर्ण जगत् परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे ही व्याप्त है।

उपर्युक्त कथनोंसे सिद्ध है कि वे सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त हैं तथा जगत्में उनसे परतर अन्य कुछ भी नहीं है। वे सर्वदेवात्मा, सर्वदेवमय तथा विश्वमय हैं। सभी देवता उन्हींके अङ्ग हैं। निम्नाङ्कित श्लोकोंसे यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है—

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवम्प्रति गच्छति॥

(पाण्डवगीता, श्लोक ८५)

सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्ववेदमयो मनुः॥

(महाभारत, भीष्म० ४३ । २)

भगवान्की पूजासे सभी देवताओं तथा प्राणियोंकी तुष्टि हो जाती है और तत्त्वज्ञानके द्वारा की गयी किसी भी देवता एवं प्राणीकी पूजा भगवान्की पूजा होती है और किसीको किया गया प्रणाम आदि भी उन्हींको प्राप्त होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीदुर्गासप्तशतीमें देवता-तत्त्व

(श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल)

मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत श्रीदुर्गासप्तशतीके पाठ करने तथा दुर्गार्चन करनेका भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तोंमें अधिक प्रचार है और नवरात्रोंमें तो शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक सोत्साह किया जाता है। दुर्गोपासनाकी परम्परा प्राचीन कालसे ही चली आ रही है। दुर्गाके अनेक नाम हैं, इनमें मुख्य रूपसे देवी दुर्गा ही प्रधान देवता हैं। मनुष्योंके द्वारा ये आराधित होनेपर उन्हें भोग, स्वर्ग, अपवर्ग सब कुछ प्रदान कर देती हैं—**'आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा।'** किंतु गौणरूपमें अन्य देवी-देवताओंकी चर्चा भी आयी है। यहाँ इसी ग्रन्थका आधार लेकर देवता-तत्त्वपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जा रहा है—

श्रीदुर्गासप्तशती (१।६४) में भगवती महामायाका स्वरूप सुमेधा ऋषिने **'नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥'**— इस आधे श्लोकमें ही बता दिया है।

महर्षि अम्भृणकी वाक् नाम्नी ब्रह्मविदुषी कन्याने सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माके साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया था। उन्होंने अपना आत्मस्वरूप प्रकट करते हुए आठ मन्त्रोंमें जो उद्गार प्रकट किये हैं, उन्हें देवीसूक्त कहा जाता है। देवीसूक्तमें सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माकी महिमाका गान इस प्रकार किया गया है—वे कहती हैं—'मैं ही रुद्रादि समस्त देवताओंके रूपमें, समस्त कर्म, कर्म-संस्कार एवं कर्मफलके रूपमें, सब प्रकार उपासना, उसका ज्ञान एवं उसके फलके रूपमें, तत्त्वोपदेष्टाके रूपमें, साधना अथवा वैषयिक सर्वकर्मोंके नियन्ताके रूपमें, जगत्प्रसवित्री, पालयित्री एवं संहन्त्री शक्तिरूपा जननीके रूपमें प्रकाशित हुआ करती हूँ; किंतु मेरे जगदतीत निरञ्जनस्वरूपकी महिमा मन-वाणीके अगोचर है, अतः दुर्ज्ञेय है।'

इसी प्रकार 'श्रीदेव्यथर्वशीर्ष' में देवताओंकी जिज्ञासाके उत्तरमें महादेवी स्वयं कहती हैं—**'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च।'** इसमें महादेवीके स्वरूपका अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। संक्षेपमें, समस्त देवताओंके रूपमें एक देवी ही प्रकाशित हो रही हैं।

भगवतीके इस अनिर्वचनीय स्वरूपके विषयमें श्रवण करके अथवा ज्ञान प्राप्त करके साधककी पिपासा-निवृत्ति नहीं होती। जगद्भोगमें अभ्यस्त जीव तो परमात्माको प्रत्यक्ष करना चाहता है, उसका उपभोग करना चाहता है, उसके चरणोंमें अपना सुख-दुःख निवेदन करना चाहता है, उसकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करके सदा-सदाके लिये उसके साथ सायुज्य चाहता है। इसका उपाय श्रीदुर्गासप्तशतीमें अत्यन्त रोचक शैलीमें प्रस्तुत किया गया है।

जीवकी साधनाका लक्ष्य है—सच्चिदानन्द-स्वरूपकी अनुभूति। यही जीवका शुद्ध स्वरूप है। किसी भी कारणवश हम भले ही असत्, अचित् एवं निरानन्द हो गये हैं, हमें अपने स्वरूपकी विस्मृति हो गयी है, किंतु उस स्वरूप-स्मृतिका हमें पुनर्लाभ हो, इसीलिये साधनाकी आवश्यकता है। 'मैं अनन्तकालतक रहूँ, मेरा अस्तित्व लोप न हो'—इसीका नाम 'सत्' की उपासना है। 'मैं चिरकालतक रहूँ और मुझे इसका ज्ञान भी रहे कि मैं हूँ'—इसीका नाम 'चित्' की साधना है। 'मैं चिरकाल रहूँ, यह जानता हुआ सर्वदा आनन्दमय रहूँ'—इसीका नाम 'आनन्द'की साधना है। इस प्रकार प्रत्येक जीव सच्चिदानन्दका अन्वेषी है। देवी-माहात्म्यके तीनों चरित्रोंमें क्रमशः सत्, चित् एवं आनन्दकी प्रतिष्ठाका ही वर्णन है। अब संक्षेपमें तीनों चरित्रोंके आख्यानपर विचार किया जा रहा है—

प्रथम चरित्रका प्रतिपाद्य विषय है—'सत्-प्रतिष्ठा।' ऊँच-नीच नाना योनियोंमें भटकता हुआ जीव जब महामायाकी अहैतुकी कृपासे अनुगृहीत होता है, तब उसका अन्तःकरण स्वर्गीय ज्योतिसे उद्भासित होता है। अर्थात् निर्मल ज्ञानालोक हृदयको प्रकाशित कर देता है और वह भगवत्सत्ताके विषयमें पूर्णतः विश्वासवान् हो जाता है। किंतु अनादिजन्मसञ्चित संस्कारोंके हेतु क्षुधा, तृष्णा, निद्रा प्रभृति, दैहिक, स्त्री-पुत्रादि सांसारिक, धन-यश प्रभृति जागतिक, दया-क्षमा-संध्या-वन्दनादि प्रभृति पारमार्थिक एवं वैधकर्म-जनित भावराशियाँ उसके चित्तको चञ्चल किये रहती हैं। राजा सुरथ एवं समाधि नामक वैश्य अपने ही परिजनोंद्वारा तिरस्कृत तथा निर्विण्ण

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होकर वनमें चले गये और दोनोंको परस्पर कुशल-प्रश्न करनेपर यह ज्ञात हुआ कि दोनोंकी स्थिति समान है और वे उन लोगोंके लिये ही दुःखी हैं, जो उनसे शत्रुवत् व्यवहार करते हैं और उनका तिरस्कार करते हैं, यह सब, जानते हुए भी मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। दोनों ही अपने मोहका वास्तविक कारण निश्चित न कर पाने-हेतु सद्गुरु सुमेधा ऋषिकी शरणमें गये और उनसे मोह-मुक्त होनेका उपाय पूछा। महर्षि सुमेधाने उन्हें समझाते हुए कहा—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

(दुर्गा० १।५५-५६)

भगवती महामाया, प्राणिमात्र यहाँतक कि ब्रह्मा, विष्णु, महेशको भी बलपूर्वक मोहाभिभूत कर देती हैं। अतएव इससे दुःखित होनेका कोई कारण नहीं रहता, केवल सर्वदा यही ध्यानमें रखना चाहिये कि मोहरूपसे माँ ही उपस्थित हैं, हम तो उनके क्रीडनमात्र हैं। ये 'महामाया' कौन हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें सुमेधा ऋषिने आधे श्लोकमें ही उनका स्वरूप बता दिया—

'नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।'

यह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होनेवाला सम्पूर्ण जगत् 'महामाया'का ही स्वरूप है और वही जगत्की समस्त वस्तुओंमें व्याप्त है। इस सिद्धान्तको सरल विश्वासके साथ सर्वभावेन स्वभाव बना लेनेपर ही सर्वत्र मातृदर्शन होने लगता है। यही 'सत्'-प्रतिष्ठा है। तभी हम इस विश्वरूपिणी जगज्जननीको प्रणाम करते हुए सरल मनसे कह सकते हैं—

सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम्॥

'देवी क्यों और कैसे आविर्भूत होती हैं?'—इस प्रश्नके उत्तरमें सुमेधा ऋषिने कहा कि 'देवी देवताओंके कार्यसिद्धि-हेतु समय-समयपर प्रकट होती हैं।' प्रथम चरित्रमें योगमाया निद्रादेवीका चरित्र वर्णित हुआ है। प्रलयकालमें भगवान् विष्णु प्रलयपयोधिमें शेषशय्यापर योगनिद्रालीन होकर शयन कर रहे थे। विपद्ग्रस्त ब्रह्माने भगवती योगमायाकी स्तुति करके उन्हें निद्रादेवीसे मुक्त कराया। तब भगवान् विष्णुने योगमायाके प्रभावसे मुग्ध असुरद्वय मधु-कैटभको उन्हींके वरके प्रभावसे वध किया और प्रजापति ब्रह्माकी जीवन-रक्षा की। मधु-कैटभके मेदसे मेदिनी (पृथ्वी) का प्रादुर्भाव हुआ।

मध्यमचरित्रमें भगवती महालक्ष्मीका प्राकट्य वर्णित हुआ है। देवासुरसंग्राममें महिषासुरने देवराज इन्द्रको पराजित करके स्वर्ग छीन लिया और इन्द्र-समेत सूर्य, वरुण, अग्नि, वायु, यम, चन्द्रमा प्रभृति समस्त देवताओंका अधिकार छीनकर वह स्वयं ही अधिष्ठाता बन बैठा। दुःखी देवता ब्रह्माजीको साथ लेकर भगवान् विष्णु एवं शिवके समीप गये और उनके सम्मुख अपनी दुरवस्थाका वर्णन किया। देवताओंकी करुण दशाको देखकर भगवान् श्रीविष्णु, शिव एवं इन्द्रादि देवता क्षुब्ध हो गये और उनके शरीरसे महान् तेज निःसृत हुआ और वह तेजःपुञ्ज घनीभूत होकर एक दिव्य स्त्रीके रूपमें परिवर्तित हो गया, जिसके तेजसे सारा विश्व उद्भासित हो उठा—

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा॥

(२।१३)

स्कन्दपुराण, मार्कण्डेयपुराण, कालिकापुराण, देवीपुराण एवं देवीभागवत आदिमें महिषमर्दिनी दुर्गा समस्त देवशक्तियोंका समन्वित रूप हैं। श्रीदुर्गासप्तशतीके मध्यमचरित्रमें उनकी उत्पत्ति तथा असुरोंके संहारसहित महिष-वधका चरित्र निरूपित है। यह समस्त देवताओंका एकत्र संघटित रूप है।

भगवतीका विग्रह चिन्मय है, क्योंकि यह तेजसे ही प्रकट हुआ है। पृथक्-पृथक् देवताओंके तेजसे भगवती दुर्गाके पृथक्-पृथक् अवयव गठित हुए और प्रत्येक देवताओंने अपने-अपने शस्त्रास्त्र जो उनकी व्यक्तिगत विशिष्ट शक्तिके ही प्रतीक हैं, उनको समर्पित किया। कुछ देवताओंने अपनी शोभा, सम्पत्ति एवं वैभवके प्रतीक वस्त्र, अलंकार, माल्यादि भी माँको सादर समर्पित किया। इस प्रकार समस्त देवताओंद्वारा सम्मानित देवीने प्रसन्न होकर अट्टहास किया। उस प्रचण्ड अट्टहाससे क्रुद्ध महिषासुर अपनी विशाल सेनासहित देवीकी दिशामें जब अग्रसर हुआ, तो देखता है कि एक सिंहारूढ सहस्रों भुजाओंवाली देवी अपनी प्रभासे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रही हैं। उनके चरणोंके भारसे पृथ्वी दबी जा रही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है और उनके मस्तकस्थित मुकुटसे आकाशमें रेखा-सी खिंच रही है। वे देवी अपने दिव्य धनुषकी भयङ्कर टङ्कारसे सभी लोकोंको विक्षुब्ध कर रही हैं।

जबतक देववृन्द अपनी अलग-अलग शक्तिके भरोसे असुरोंसे युद्ध कर रहे थे तबतक विजयी न हो सके थे, फलतः पराभूत हो गये। तदनन्तर देवताओंकी समष्टि महती शक्ति 'महालक्ष्मी' के रूपमें अपने तेजोमय स्वरूपसे असुरकुलको भयभीत करने लगी। उस महासमरमें देवीने समस्त सेनापतियोंसहित महिषासुरको परास्त कर दिया। देवताओंद्वारा की गयी स्तुतिमें महालक्ष्मीके प्राकट्य-सिद्धान्तको कितने सुन्दररूपसे व्यक्त किया गया है—**'देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या।'** अर्थात् समस्त देवताओंके समवेत शक्तिपुञ्जकी साकार मूर्ति धारण करके जिसने अपनी आत्म-शक्तिसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त कर रखा है।' वह सम्पूर्ण स्तुति अत्यन्त सुन्दर एवं नित्य पठनीय है। देवीने तत्पश्चात् प्रसन्न होकर देवताओंको वर प्रदान किया कि इस स्तुतिद्वारा जो भी प्राणी मेरी स्तुति करेगा, मैं उसकी ऐहिक एवं पारलौकिक समस्त कामनाएँ पूर्ण करूँगी।

केनोपनिषद्में एक आख्यायिका है। असुरोंको पराजित करके देववृन्द अपनी शक्तिपर गर्व कर रहे थे, उसी समय ब्रह्मने यक्षरूपसे प्रकट होकर अग्निसे पूछा—'तुम्हारेमें क्या शक्ति है?' अग्निके यह कहनेपर कि वह अपनी शक्तिसे क्षणभरमें सारे विश्वको भस्मीभूत कर सकता है, यक्षने उसके सम्मुख एक तृण-खण्ड रखकर उसे जलानेको कहा। अग्नि अपनी सम्पूर्ण शक्तिका प्रयोग करके भी उस क्षुद्र तिनकेको नहीं जला सके। इसी प्रकार यक्षने वायुको उस तृणको उड़ा ले जानेको कहा, किंतु वायु उसे टस-से-मस भी नहीं कर सके। तब देवगणोंकी समझमें आया कि वास्तवमें उनकी अपनी कोई शक्ति नहीं है, वे सम्पूर्ण शक्तियोंके मूल केन्द्र सर्वशक्तिमान् परमात्मासे ही सशक्त होते हैं। अन्यथा अशक्त और निष्क्रिय हो जाते हैं। माँ हैमवती दुर्गा ही शक्तिका अन्यतम स्वरूप हैं।

इसके बाद श्रीदुर्गासप्तशतीमें उत्तर चरित्रका आख्यान प्रारम्भ होता है। पराकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामक दैत्योंने देवताओंसमेत देवराज इन्द्रको अपने बलसे परास्त करके उनके समस्त अधिकार छीनकर अपने अधीन कर लिये। भगवती महालक्ष्मीद्वारा प्रदत्त वरको स्मरण करके देवगण हिमालयपर जाकर देवी विष्णुमायाकी स्तुति करने लगे। तब वहाँ स्नानार्थ आयी हुई भगवती पार्वतीकी देहसे अम्बिकादेवी प्रकट हुईं। दैत्यराज शुम्भने अम्बिकाके अपूर्व रूपकी ख्याति सुनकर विवाहका प्रस्ताव भेजा। देवीद्वारा तिरस्कृत होकर उसने क्रमशः अपने सेनापति धूम्रलोचन एवं चण्ड-मुण्डको उसे बलपूर्वक पकड़ लाने-हेतु भेजा। ये सभी युद्धमें देवीद्वारा निहत हुए। तत्पश्चात् कुपित दैत्यराजने समस्त दैत्य सेनाओंको एकत्र करके संगठितरूपसे महाबली रक्तबीजके अधीनत्वमें देवीको लाने-हेतु भेजा। इस अवसरपर समस्त देवताओंके शरीरसे उनकी विशिष्ट शक्तियाँ उन्हींके अनुरूप भूषण-वाहन-आयुधादिसहित प्रकट होकर असुरोंसे युद्ध करने-हेतु उपस्थित हुईं (८।१२-१४)। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री, शिवा आदि प्रमुख शक्तियाँ प्रबल वेगसे असुरोंका विनाश करने लगीं। रक्तबीजके वधोपरान्त निशुम्भका भी वध हो गया। तब दैत्यराज शुम्भ युद्ध-हेतु आया और आते ही उसने व्यङ्ग्यपूर्वक देवीसे कहा कि 'तुम तो दूसरोंके बलके भरोसे युद्ध कर रही हो, तुम्हें इतना गर्व शोभा नहीं देता।' इसके उत्तरमें देवीने कहा—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः॥
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका॥

(१०।५-६)

'अरे दुष्ट! इस संसारमें एकमात्र मैं ही स्थित हूँ, मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है। देखो, ये सारी मेरी ही विभूतियाँ हैं, अतः मुझमें ही प्रवेश कर रही हैं। तदनन्तर ब्रह्माणी-प्रभृति समस्त देवियाँ अम्बिकादेवीके शरीरमें लीन हो गयीं और वहाँ अकेली अम्बिकादेवी ही रह गयीं।'

इस उपाख्यानकी श्रीमद्भगवद्गीताके दशम अध्यायके विभूतियोग एवं विशेषरूपसे एकादश अध्यायके विश्वरूप-दर्शनके सिद्धान्तसे सादृश्य द्रष्टव्य है। अद्वैततत्त्वका कितना सुन्दर एवं विशद प्रदर्शन है। **'अत्र जगति एक अहम् एव'**-इसकी व्यञ्जना है—'इस संसारमें जो कुछ प्रतीत हो रहा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है वह एकमात्र मैं ही हूँ।' यह जगत् मेरा ही स्थूल रूप है। 'जगत्' में मन, बुद्धि इत्यादिका भी समावेश हो जाता है। **'द्वितीया का ममापरा'** वाक्यद्वारा सर्वविध द्वैतका निषेध कर दिया गया है। श्रुतिके **'एकमेवाद्वितीयम्'** की अपेक्षा भी इसमें कुछ विशेषत्व है। श्रुतिवाक्यसे सर्वभेदविवर्जित एक परम वस्तुकी सत्तामात्रका बोध होता है और उसके स्वरूपको समझानेके लिये **'अस्थूलमनणु'** **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** आदि परोक्षवाक्योंकी एवं **'अहं ब्रह्मास्मि'**, **'तत् त्वमसि'** आदि प्रत्यक्ष वाक्योंकी सहायता लेनी पड़ती है। किंतु उपर्युक्त मन्त्रमें देवीने अपना आत्मपरिचय देनेमें प्रत्यक्षताबोधक शब्दोंका प्रयोग करके युगपत् अपनी सत्ता एवं स्वरूप दोनोंको स्पष्ट-रूपसे व्यक्त कर दिया है। ब्रह्माणी-प्रमुख विभिन्न शक्तियोंका विकास देखकर शुम्भ जब अम्बिकादेवीके एकत्वके विषयमें संशयापन्न हो गया, तब माँने कृपापूर्वक अपनी विभूतियोंका अपनेमें संहरण करके प्रमाणित कर दिया कि ये सब उनकी विभूतियाँ ही हैं, पृथक् शक्तियाँ नहीं हैं।

इस प्रकार भगवती महामायाके दिव्य चरित्रोंसे परिपूर्ण श्रीदुर्गासप्तशती एक अपूर्व मन्त्रात्मक ग्रन्थ है। पूर्ण समर्पणकी भावनासे मातृचरणोंका आश्रय लेकर इसका सम्यक् अनुष्ठान करनेसे ऐहिक एवं पारलौकिक सब प्रकारकी मनःकामनाएँ पूर्ण होती हैं। सब प्रकारकी बाधाओं एवं विपदाओंका नाश होता है। नित्यकर्मरूपसे इसका निष्काम सेवन करनेसे साधकके मनसे शनैः-शनैः कामनाकी गंध क्षीण हो जाती है और मातृकृपासे साधककी आध्यात्मिक उन्नतिका पथ प्रशस्त होता जाता है—

'सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।'

चतुष्षष्टि योगिनी

चौंसठ मातृ-योगिनियाँ शीघ्र ही फल देनेवाली होती हैं। लिखा है कि धूप-दीप, नैवेद्य, पूजा, उपहार आदिका यदि समर्पण किया जाय तो ये माताएँ शीघ्र प्रसन्न हो जाती हैं और सभी अभिलषित पदार्थोंको देती हैं (स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४५।४६)। जो योगिनी-पीठका सेवन करता है, उसके सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। यदि मातृ-योगिनियोंके पीठपर अन्य मन्त्रका भी जप किया जाता है तो वह भी शीघ्र फलप्रद होता है (स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४५।४५)। इनके नामोंके सुननेमात्रसे क्षणमात्रमें ही पाप जलकर नष्ट हो जाते हैं—

'आकर्ण्य यानि पापानि क्षयन्ति भविनां क्षणात्॥'

(स्कन्दपु०, काशी० ४५।३३)

जो इनके नामोंका पाठ करते हैं, उन्हें डाकिनी, शाकिनी, कूष्माण्ड एवं राक्षस आदि पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। उनके बच्चोंको शान्ति मिलती है और गर्भकालमें भी किसी प्रकारका कोई कष्ट नहीं होता। संग्राम, राजसभा और विवादमें विजय प्राप्त होती है—

न डाकिन्यो न शाकिन्यो न कूष्माण्डा न राक्षसाः।
तस्य पीडां प्रकुर्वन्ति नामानीमानि यः पठेत्॥
शिशू[illegible]
रणे राजकुले वापि विवादे जयदान्यपि॥

(स्कन्दपु०, काशी० ४५।४३-४४)

कल्पभेदसे चतुष्षष्टि योगिनियोंके नाम भिन्न-भिन्न आख्यासे पाँच प्रकारके मिलते हैं।

१-'जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता' आदि नाम शान्तिसारमें मिलते हैं।

२-योगिन्यष्टाष्टकं वक्ष्ये ऐन्द्रादीशान्ततः क्रमात्।
अक्षोभ्या रूक्षकर्णी च राक्षसी कृपणाक्षया॥

यह मत अग्निपुराणका है।

३-'अघोरा घोररूपा च चण्डा चण्डप्रभा तथा'—यह पक्ष प्रतिष्ठा-तिलकका है।

४-'दिव्ययोगा महायोगा सिद्धयोगा महेश्वरी' आदि क्रम रुद्रयामलका है। **५-'गजानना सिंहमुखी गृध्रास्या काकतुण्डिका'** आदि नाम काशीखण्ड एवं रुद्रकल्पद्रुममें मिलते हैं।

यहाँ स्कन्दपुराणके काशीखण्डोक्त मातृकाओंके चौंसठ नाम दिये जाते हैं—

१-गजानना, २-सिंहमुखी, ३-गृध्रास्या, ४-काकतुण्डिका, [illegible] ७-वाराही, ८-शरभानना,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

९-उलूकिका, १०-शिवारावा, ११-मयूरी, १२-विकटानना, १३-अष्टवक्त्रा, १४-कोटराक्षी, १५-कुब्जा, १६-विकटलोचना, १७-शुष्कोदरी, १८-ललज्जिह्वा, १९-अश्वदंष्ट्रा, २०-वानरानना, २१-ऋक्षाक्षी, २२-केकराक्षी, २३-बृहत्तुण्डा, २४-सुराप्रिया, २५-कपालहस्ता, २६-रक्ताक्षी, २७-शुकी, २८-श्येनी, २९-कपोतिका, ३०-पाशहस्ता, ३१-दण्डहस्ता, ३२-प्रचण्डा, ३३-चण्डविक्रमा, ३४-शिशुघ्नी, ३५-पापहन्त्री, ३६-कालीरुधिरपायिनी, ३७-वसांधया, ३८-गर्भभक्षा, ३९-शवहस्ता, ४०-अन्त्रमालिनी, ४१-स्थूलकेशी, ४२-बृहत्कुक्षिणी, ४३-सर्पास्या, ४४-प्रेतवाहना, ४५-दन्दशूककरा, ४६-क्रौञ्ची, ४७-मृगशीर्षा, ४८-वृषानना, ४९-व्यात्तास्या, ५०-धूमनिःश्वासा, ५१-व्योमैकचरणा, ५२-ऊर्ध्वदृक्, ५३-तापनी, ५४-शोषणीदृष्टि, ५५-कोटरी, ५६-स्थूलनासिका, ५७-विद्युत्प्रभा, ५८-बलाकास्या, ५९-मार्जारी, ६०-कटपूतना, ६१-अट्टाट्टहासा, ६२-कामाक्षी, ६३-मृगाक्षी और ६४-मृगलोचना।

काशीमें चौसट्टीघाटपर चतुष्षष्टिदेवीके मन्दिरमें इन चौंसठ देवियोंके पूजनसे सम्यक् फलकी प्राप्ति होती है। ये काशीमें नित्य निवास करती हैं। एक दिनके लिये भी ये काशीका परित्याग नहीं करतीं। घूमनेके लिये तीनों लोकोंमें अवश्य जाती हैं, किंतु काशीके अतिरिक्त और कहीं निवास नहीं करतीं (४५। २३)। काशीसे तो इनका पहलेसे ही लगाव रहा है। इनका काशीमें इतना गहरा अनुराग है कि जब भगवान् विश्वनाथने इनको काशी भेजा तो ये बहुत प्रसन्न हुईं, क्योंकि काशीके दर्शनोंके लिये ये पहलेसे ही उत्कण्ठित थीं। काशी आनेमें इनको देर कितनी लगती। दूरसे ही इन्होंने आँखे फैलाकर काशीको देखा और बहुत प्रसन्न हुईं तथा अपनी आँखोंकी उपलब्धिको धन्य माना। इन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंकी इसलिये प्रशंसा की कि बड़ी होनेके नाते काशीको ये इच्छाभर देख पायीं (४५। १)। माताओंका काशीवासियोंसे भी बहुत प्रेम है, इसलिये शास्त्रमें आदेश दिया गया है कि काशीके निवासी वर्षमें एक बार चैत्र कृष्ण प्रतिपदाको माताओंका दर्शन अवश्य करें। यदि काशीके निवासी आलस्यवश या अवज्ञावश इस वार्षिकी यात्राको न कर सकेंगे तो उनको पग-पगपर विघ्न होगा। इनके नमस्कारमात्रसे मनुष्य विघ्नोंसे पीड़ित नहीं होता—

चैत्रकृष्णप्रतिपदि तत्र यात्रा प्रयत्नतः।
क्षेत्रविघ्नप्रशान्त्यर्थं कर्तव्या पुण्यकृज्जनैः॥
यात्रां च सांवत्सरिकीं यो न कुर्यादवज्ञया।
तस्य विघ्नं प्रयच्छन्ति योगिन्यः काशिवासिनः॥
अग्रे कृत्वा स्थिताः सर्वास्ताः काश्यां मणिकर्णिकाम्।
तन्नमस्कारमात्रेण नरो विघ्नैर्न बाध्यते॥

(स्कन्दपु०, काशी० ४५। ५२—५४)

योगिनीचक्र—विशिष्ट देवपूजा, प्रतिष्ठादि कर्मों तथा यज्ञ-यागादि अनुष्ठानोंमें यज्ञमण्डपमें आग्नेय (दक्षिण-पूर्व) कोणके चतुष्षष्टि कोष्ठात्मक वेदीमें तत्तद् देवियोंकी स्थापना कर आवाहनपूर्वक वैदिक मन्त्रों अथवा नाममन्त्रादिसे उनका पञ्चोपचार अथवा षोडशोपचार पूजन किया जाता है।
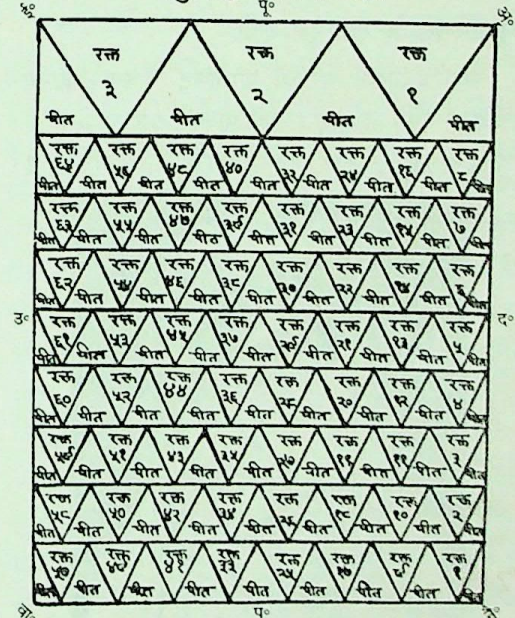
चतुष्षष्टि योगिनी-चक्र

ई०   पू०   आ०

रक्त ३	रक्त २	रक्त १

रक्त ६४	रक्त ५६	रक्त ४८	रक्त ४०	रक्त ३२	रक्त २४	रक्त १६	रक्त ८
रक्त ६३	रक्त ५५	रक्त ४७	रक्त ३९	रक्त ३१	रक्त २३	रक्त १५	रक्त ७
रक्त ६२	रक्त ५४	रक्त ४६	रक्त ३८	रक्त ३०	रक्त २२	रक्त १४	रक्त ६
रक्त ६१	रक्त ५३	रक्त ४५	रक्त ३७	रक्त २९	रक्त २१	रक्त १३	रक्त ५
रक्त ६०	रक्त ५२	रक्त ४४	रक्त ३६	रक्त २८	रक्त २०	रक्त १२	रक्त ४
रक्त ५९	रक्त ५१	रक्त ४३	रक्त ३५	रक्त २७	रक्त १९	रक्त ११	रक्त ३
रक्त ५८	रक्त ५०	रक्त ४२	रक्त ३४	रक्त २६	रक्त १८	रक्त १०	रक्त २
रक्त ५७	रक्त ४९	रक्त ४१	रक्त ३३	रक्त २५	रक्त १७	रक्त ९	रक्त १

उ०   द०

वा०   प०   नै०

आरम्भमें चक्रके पूर्व भागमें दक्षिणसे उत्तरकी ओर तीन कलशोंमें महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीकी स्थापना कर उनकी पूजा करनी चाहिये। इन योगिनी माताओंके अनुग्रहसे दुःखोंका विनाश, अभयप्राप्ति एवं सर्वविध कल्याणकी प्राप्ति होती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रामभक्त श्रीहनुमान्‌जीके दर्शन

भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण विश्वके एक महान् आदर्श हैं और भक्तोंके लिये तो वे सर्वस्व ही हैं। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके अत्यन्त प्रीतिभाजन हैं—पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जी। ये अपने प्राणाराध्यके बिना एक क्षण भी नहीं रह पाते, इसी कारण जहाँ-जहाँ भगवान् श्रीसीता-रामजीके मन्दिर एवं श्रीविग्रह हैं, वहीं श्रीमहावीरजी भी भगवान्‌के सेवक-रूपमें दर्शन देते हैं। विद्या, बुद्धि, बल, तेज, वीरता, पराक्रम, सेवा एवं भक्तिके मूर्तस्वरूप तथा नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके अद्‌भुत आदर्श श्रीहनुमान्‌जीके प्रति उनके भक्तों तथा साधकोंकी अत्यधिक निष्ठा एवं अपार भक्ति है। ये भक्तजनोंके प्रेरणास्रोत होनेके साथ ही उनके गुरु भी हैं। इनकी कृपासे भक्तको भगवान् मिलते हैं। उनकी अर्चाके रूपमें श्रीसीतारामकी अर्चा तथा श्रीसीतारामकी आराधनाके रूपमें हनुमान्‌जीकी भी आराधना होती है। सम्पूर्ण भारत ही नहीं, प्रत्युत बाहरके देशोंमें भी श्रीमहावीरजीकी आराधना लोग बड़ी श्रद्धासे करते हैं। देशमें प्रायः सर्वत्र उनके छोटे-बड़े स्वतन्त्र मन्दिर हैं तथा श्रीराम-मन्दिरोंमें भी उनके अर्चा-विग्रह हैं। जाग्रत् देवताके रूपमें इनकी मान्यता है। इनकी आराधनासे फलकी प्राप्ति सद्यः होती है। इसीलिये सर्वत्र श्रीहनुमान्‌जीके मन्दिरोंमें दर्शनार्थियोंकी भीड़ बढ़ती ही जा रही है। भाग्यशाली उपासकोंको भगवान् श्रीमहावीर अपना प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनका कल्याण करते हैं। श्रीसंकटमोचनजीके कतिपय पावन-स्थलों तथा अर्चा-विग्रहोंका यहाँ संक्षिप्त विवरण दिया गया है। भावनापूर्वक इनका दर्शन करनेसे भक्तको मनोवाञ्छित फल प्राप्त होनेके साथ-साथ भगवद्-भक्ति भी प्राप्त होती है।

हनुमानगढ़ीके श्रीहनुमान्‌जी

सप्तमोक्षदायिनी पुरियोंमें परिगणित, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी नगरी अयोध्या सरयूके पावन तटपर अवस्थित है। यहाँका श्रीहनुमान्-मन्दिर 'हनुमानगढ़ी'के नामसे विख्यात है।
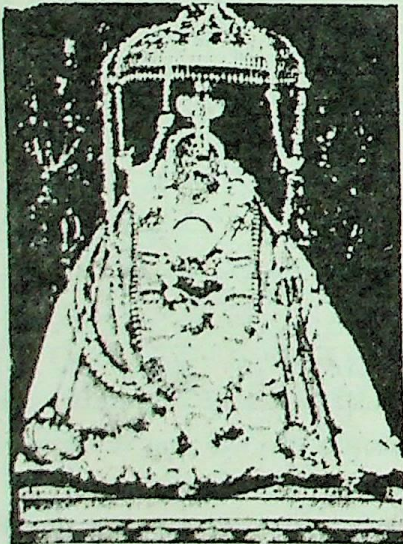
वह राजद्वारके सामने ऊँचे टीलेपर चतुर्दिक् प्राचीरके भीतर है। मन्दिर बड़ा है और उसमें श्रीहनुमान्‌जीकी स्थानक मूर्ति है। श्रीमारुतिकी एक और मूर्ति यहाँ है, जो केवल छः इंच ऊँची है और सदा पुष्पाच्छादित रहती है। श्रीहनुमान्‌जीके भक्तोंके लिये यह स्थान विशेष श्रद्धास्पद है। भक्तों एवं दर्शनार्थियोंके कारण यहाँ नित्य ही मेला-सा लगा रहता है। मंगलवार तथा शनिवारको तो अपार भीड़ होती है तथा भक्तजन भगवान्‌का दर्शनकर अपनेको परम भाग्यशाली मानते हैं।

श्रीसंकटमोचन हनुमान्‌जी

(१) भगवान् भूतभावनकी नगरी काशीके दक्षिण लंका मुहल्लेके निकट एक छोटेसे अरण्यके मध्य श्रीसंकटमोचनजीका पावन स्थल है। यहाँका वातावरण एकान्त, शान्त, पवित्र एवं उपासकोंके लिये दिव्य साधन-स्थलीके योग्य है। मन्दिरके प्राङ्गणमें श्रीहनुमान्‌जीके दिव्य विग्रहके सम्मुख श्रीराघवेन्द्रसरकार, श्रीकिशोरीजी एवं श्रीलखनलालजीके साथ विराजमान हैं। श्रीहनुमान्‌जीके मन्दिरमें अलग एक ओर भगवान् विश्वनाथजीकी लिङ्गमयी एक मूर्ति भी विराजमान है। श्रीसंकटमोचन हनुमान्‌जीके समीप ही श्रीठाकुरजी भगवान् श्रीनृसिंहके रूपमें विराजमान हैं।

भगवान्‌के परम कृपापात्र श्रीतुलसीदासजीको कर्णघण्टा-स्थलपर कथाके समय जब श्रीहनुमान्‌जीका दर्शन कोढ़ी-वेषमें हुआ, तब गोस्वामीजी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। असी मुहल्लेसे दक्षिण घोर जंगल (वर्तमान लंका)में पहुँचकर तुलसीदासजी उनके चरणोंपर गिर पड़े। अत्यन्त विनम्र प्रार्थना करनेपर श्रीहनुमान्‌जी प्रकट हो गये और बोले—'तुम क्या चाहते हो?' गोस्वामीजीने कहा—'मैं भगवान् श्रीरामका

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दर्शन करना चाहता हूँ।' श्रीहनुमान्जीने अपना दक्षिण बाहु उठाकर कहा—'जाओ, चित्रकूटमें प्रभु-दर्शन होगा।' पुनः वाम बाहुको अपने हृदयपर रखकर बोले—'हम दर्शन करा देंगे।' गोस्वामीजीने कहा—'प्रभो ! आप इसी रूपसे भक्तोंके लिये यहींपर निवास करें।' श्रीहनुमान्जीने 'तथास्तु' कहा और वे वहीं विराजमान हो गये।

श्रीसंकटमोचनकी यह अर्चा-प्रतिमा गोस्वामी तुलसीदासजीके तप एवं पुण्यसे प्रकट हुई स्वयम्भू मूर्ति है। इस मूर्तिमें श्रीहनुमान्जी दक्षिण भुजासे भक्तोंको अभयदान कर रहे हैं एवं वामभुजा उनके हृदयपर स्थित है। प्रतिमा प्रायः पुष्पाच्छादित रहती है।

श्रीसंकटमोचन हनुमान्जी सदा ही अपने भक्तोंपर कृपा करते रहते हैं। एक बार काशी-निवासी एक गरीब ब्राह्मण जो नित्य संकटमोचनजीका दर्शन करते थे, परिवार-पोषणकी समुचित व्यवस्था न होनेसे उनकी धर्मपत्नीने उनपर व्यङ्ग्य किया और कहा कि 'केवल हनुमान्जीका दर्शन करते रहोगे तो ऐसे ही भूखों मरोगे।' उस ब्राह्मणने कहा—'सावधान ! हमें चाहे जो कुछ कहो, पर हमारे इष्टदेवके विरुद्ध एक शब्द भी मुखसे मत निकालना।' उस ब्राह्मणकी दीन दशा देखकर करुणानिधान हनुमान्जी द्रवीभूत हो गये। जिसके फलस्वरूप ब्राह्मणको एक स्थलपर गड़े हुए कई बर्तनोंमें द्रव्यराशि मिल गयी, जिससे उन्होंने अपने स्थानपर काशीमें ही श्रीमारुतिकी एक मूर्ति पधराकर पूजन-भजन प्रारम्भ कर दिया। घर-परिवारमें सर्वत्र आनन्द-मङ्गल छा गया। गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है—

को नहिं जानत है जगमें कपि संकटमोचन नाम तिहारो ॥

(२) श्रीकालीजीके शक्तिपीठ महानगरी कलकत्तामें एक हनुमान्जीका सिद्धपीठ है। यह स्थान एक गलीमें है, जो हनुमान-गलीके नामसे प्रसिद्ध है। इस सिद्धपीठके हनुमान्जी बड़े ही चमत्कारपूर्ण एवं फलदाता माने गये हैं, जो अपने श्रद्धालु भक्तोंकी कामना सदैव पूरी करते रहते हैं। असंख्य लोगोंको इनकी कृपाकी अनुभूति हुई है। मन्दिरमें हनुमान्जीका 'संकटमोचन'-विग्रह है, जो सर्वाभीष्टदायक है। विग्रहमें हनुमान्जीके मुखका हीं दर्शन होता है। मूर्ति प्रसन्न-मुद्रामें है एवं दर्शकोंको अपूर्व आत्मबल, साहस, शक्ति, अभय एवं शान्ति प्रदान करती है।

व्यास हनुमान्

व्यास-वेषमें भगवान् मारुतिका एक विग्रह अयोध्यामें रघुवीरनगर (रायगंज) मुहल्लेमें प्रतिष्ठित है। यह स्थान मणिपर्वतके समीप है। यह प्रतिमा उस भावकी है जब वे भगवान् श्रीरामके अनन्त गुणगणोंकी प्रशंसा भरतादि बन्धुओंके सम्मुख किया करते थे। चौदह वर्षके पश्चात् अरण्यसे लौटनेपर भगवान् श्रीराम राज्यसिंहासनपर आसीन हुए। राज्य-कार्य अत्यन्त सुखपूर्वक निर्विघ्न चल रहा था, उस समय भरतजी और शत्रुघ्नजी प्रायः एकान्त उपवनमें पवनकुमारके साथ भगवान्के लीलागुणोंका श्रवण किया करते थे, वक्ता थे श्रीहनुमान्जी। इसीसे वे व्यासरूप हनुमान् कहलाये। यह प्रतिमा ... एवं विलक्षण शक्ति सम्पन्न है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीहनुमान्‌जीके प्रेमी भक्त अयोध्या जानेपर इनका दर्शन करना आवश्यक समझते हैं।

गुफाके हनुमान्‌जी

काशीमें श्रीसंकटमोचनसे सम्बद्ध तुलसी-मन्दिर नामक स्थान है, जो असीके पास तुलसीघाटपर अवस्थित है। यह गोस्वामीजीकी साधना-स्थली है। इस स्थानपर बालरूप हनुमान्‌जी हैं, जो 'गुफाके हनुमान्‌जी'के नामसे प्रसिद्ध हैं। ये गोस्वामीजीको जैसे दर्शन दिये थे, उसी रूपमें विराजमान हैं। दक्षिणाभिमुख होनेसे ये अधिक प्रतापी माने जाते हैं। इन्हींके सम्मुख एक बीसा यन्त्र है, जिसका चरणामृत लगातार चालीस दिनोंतक पान करनेसे बहुत लाभ होता है। मन्दिरके ऊपरी भागमें भगवान् राघवेन्द्रसरकार, श्रीकिशोरीजी एवं लखनलालजी विराजमान हैं। मन्दिरके क्षेत्रमें तीन और मूर्तियाँ हैं, जो क्रमशः पूर्वाभिमुख, पश्चिमाभिमुख तथा उत्तराभिमुख हैं। 'गुफाके हनुमान्‌जी' श्रीरामनाम एवं श्रीरामका मङ्गलचरित सुननेसे अतीव प्रसन्न होते हैं। अनेक लोगोंने यहाँ किष्किन्धाकाण्डके पाठका अनुष्ठानकर आशातीत लाभ उठाया है।

बालरूप श्रीहनुमान्

भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त श्रीअञ्जनीनन्दनजीका बाल-विग्रह प्रायः देखनेमें नहीं आता है। वाराणसीमें हनुमान-फाटकमें बालरूप हनुमान्‌जीका एक अत्यन्त मनोरम विग्रह है। इस प्रतिमाकी स्थापना एवं प्रतिष्ठा स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने की थी। यह अत्यन्त सिद्ध एवं जाग्रत्-क्षेत्र है। अनेक भक्तोंको इनके दर्शनसे लाभ हुआ है।

भूशायी हनुमान्‌जी

तीर्थराज प्रयागमें त्रिवेणीके सङ्गमके पास एक प्राचीन विशाल किला है। उसी किलेके समीप श्रीहनुमान्‌जीका मन्दिर है। मन्दिरमें हनुमान्‌जीकी बहुत बड़ी मूर्ति है। मूर्तिकी विशेषता यह है कि वह पृथ्वीपर लेटी हुई है। ये बड़े हनुमान्‌जी या किलेके हनुमान्‌जी भी कहलाते हैं। प्रयाग आनेवाले प्रायः प्रत्येक यात्री हनुमान्‌की मनोरम मूर्तिका दर्शनकर अपनेको धन्य समझते हैं।

श्रीहनुमान-धारा

चित्रकूट-तीर्थमें, कोटितीर्थमें पहाड़के ऊपर हनुमान्‌जी-की एक मूर्ति है। विशाल मूर्तिके ठीक सिरपर दो जलके कुण्ड हैं, जो सदा भरे रहते हैं और उनमेंसे निरन्तर जल बहता रहता है। इस धाराका जल हनुमान्‌जीको स्पर्श करता
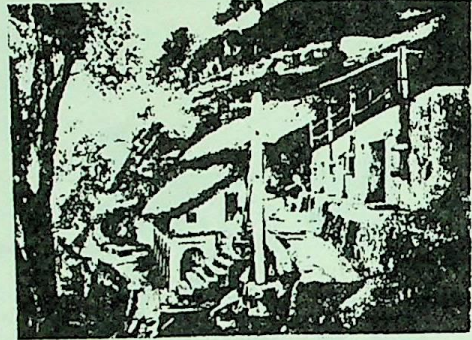
हुआ बहता है, इसीलिये इसे हनुमान-धारा कहते हैं। वृक्षोंसे आच्छादित यह स्थान अत्यन्त सुन्दर है। एक कथाके अनुसार श्रीरामके अयोध्यामें राज्याभिषेक होनेके उपरान्त एक दिन हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'महाराज! मुझे कोई ऐसा स्थान बतलाइये, जहाँ लंका-दहनसे उत्पन्न मेरे शरीरका ताप मिटे।' तब भगवान्‌ने उन्हें यह स्थान बतलाया। इस स्थानकी महिमा बड़ी विलक्षण है।

श्रीमहाबलीजी

लखनऊ, जिसका प्राचीन नाम लक्ष्मणपुर है, यहाँके अलीगंजका हनुमान-मेला अत्यन्त प्रसिद्ध है। यहाँ प्रत्येक ज्येष्ठमासके मंगलवारको न केवल हिन्दू अपितु मुसलमान तथा ईसाई आदि बन्धु भी यहाँ हनुमान्‌जीको चढ़ावा चढ़ाने आते हैं। स्थानीय लोगोंमें इसे 'महावीरजीका मेला' कहा जाता है। इस मन्दिरके विषयमें अनेक कहानियाँ कही जाती हैं, जो कुछ भी हो, यहाँ हनुमान्‌जीके भक्त बड़ी संख्यामें एकत्र होकर उनकी आराधना करते हैं और अपने जीवनको सफल मानते हैं।

श्रीसिंहपौर हनुमान्‌जी

श्रीवृन्दावनमें सिंहपौर हनुमान्‌जीका एक प्रसिद्ध मन्दिर है, जो प्रसिद्ध श्रीगोविन्ददेवजीके पास है। श्रीवृन्दावनके प्राचीन आचार्य श्रीभट्टदेवजी महाराजद्वारा निर्मित जो श्रीवृन्दादेवीका मन्दिर पहले था, उस मन्दिरके सिंहपौरपर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनके द्वारा ही श्रीहनुमान्‌जी विराजमान किये गये थे। मन्दिर तो अब खण्डित है, किंतु 'श्रीसिंहपौर हनुमान्‌जी' अब भी वहाँ भक्तोंको दर्शन देते हैं।

वीर हनुमान्‌जी

हिमालयमें टिहरी जनपदमें त्रियुगीनारायणके पास पर्वतमें एक छोटा-सा वीर हनुमान्‌जीका मन्दिर है। इस मन्दिरकी मूर्ति बड़ी विलक्षण है। दो फुट ऊँची इस मूर्तिके बायें हाथमें नंगी तलवार और दाहिने हाथमें गदा है। श्रीमारुतिका मुख सामने नहीं है, दाहिना अङ्ग देखनेमें आता है। बदरी-केदारके यात्री यहाँ दर्शन करने जाते हैं।

गिरिराजके हनुमान्‌जी

व्रज-मण्डलमें गिरिराजके हनुमान्‌जीकी अत्यन्त महिमा है। एक कथा है कि जब सेतु-बन्धनके समय श्रीहनुमान्‌जी हिमालय पर्वतकी गोदसे एक विशाल पर्वत तथा अन्य सभी वानर भी अनेक पर्वतोंको उठाकर ला रहे थे, तभी भगवान् श्रीरामकी आज्ञा हुई कि 'सभी वानर पर्वतोंको जहाँ-तहाँ स्थापित कर दें।' श्रीहनुमान्‌जीने पर्वतराज (गिरिराज) को व्रजभूमिमें स्थापित कर दिया।

गिरिराज अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगे—'पवनपुत्र ! तुमने तो मुझे कहींका भी नहीं रहने दिया, इधर तो भगवान् शिवकी संनिधि छूटी और उधर भगवान् श्रीरामकी सेवा और दर्शनसे भी मैं वञ्चित हो गया।' तब उन्होंने कहा—'गिरीश ! तुम चिन्ता न करो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हें भगवान्‌का दर्शन अवश्य कराऊँगा। श्रीरामरूपमें नहीं तो श्रीकृष्णरूपमें भगवान् तुम्हें अपने हाथोंपर उठायेंगे।' गिरिराजने कहा— 'अञ्जनीनन्दन ! आपका आशीर्वाद स्वीकार है, किंतु एक प्रार्थना और है, श्रीकृष्णके साथ आप भी रहेंगे, तभी मेरी आत्माको शान्ति मिलेगी।' श्रीहनुमान्‌जी वचनबद्ध हो गये और बोले— 'पर्वतराज ! क्या यह भी कहनेकी बात है ? जहाँ-जहाँ श्रीराम और श्रीकृष्ण होंगे, वहाँ-वहाँ तो हनुमान् अवश्य रहेंगे ही। मैं भी तुम्हारी कन्दराओंसे श्रीकृष्णकी लीलाका अवश्य दर्शन करूँगा।'

व्रजमें कहा जाता है कि श्रीगिरिराजकी सात कोसकी परिक्रमामें दस स्थानोंपर श्रीहनुमान्‌जी विराजमान हो गये ताकि जिस किसी भी दिशासे श्रीकृष्ण पधारेंगे, श्रीहनुमान्‌जी उन्हें गिरिराजपर ले आयेंगे। आज भी गिरिराजके चारों ओर दस चमत्कारपूर्ण हनुमान्-विग्रह प्रतिष्ठित हैं।

पञ्चमुखी हनुमान्‌जी

(१) उज्जैनमें बड़े गणेश-मन्दिरके निकट ही पञ्चमुखी हनुमान्‌जीका एक मन्दिर है। यहाँकी मूर्ति लगभग ढाई-तीन फुट ऊँची है। इसके ये मुख हनुमत्कवचके वर्णनानुसार ही हैं। मूर्तिकी बायीं ओरका मुख कपिका, दक्षिणका नरसिंहका, पश्चिमका गरुड़का तथा उत्तरका मुख वराहका है। ऊपरकी ओर हयवदन है। यहाँ इस स्थानकी विशेष महत्ता है।

(२) कलकत्तामें राजाकटरामें एक मन्दिर है, जिसमें श्रीहनुमान्‌जीका पञ्चमुखी विग्रह स्थापित है। मूर्तिकी विशेषता यह है कि हनुमान्‌जीका एक मुखारविन्द ऊपर आकाशकी ओर है एवं एक पीछे है, जो परिलक्षित नहीं होते, शेष तीनके दर्शन होते हैं। यह मूर्ति बड़ी ही भव्य, चित्ताकर्षक और नयनाभिराम है। इसके दर्शनमात्रसे अपूर्व बल एवं साहसका संचार होता है। यहाँ श्रद्धालु दर्शकोंकी सदैव भीड़ लगी रहती है।

नीलगङ्गाके हनुमान्

उज्जैनसे कुछ दक्षिण एक छोटा-सा सरोवर है। पुराणोंके अनुसार माता अञ्जनीके साथ श्रीहनुमान्‌जीने यहाँ तप किया था। भागीरथी गङ्गा जब भक्तोंके पातकोंका प्रक्षालन करते-करते नीलवर्णकी हो गयीं, तब ब्रह्मदेवकी आज्ञासे शिप्रामें आकर गुप्तरूपसे मिलीं और इस स्थानपर प्रकट हुई थीं, तभीसे इसको नीलगङ्गा कहा जाता है। यहाँके मुख्य तीर्थाधिपति श्रीहनुमान्‌जी ही हैं।

सीतामढ़ीके हनुमद्विग्रह

सीतामढ़ी (बिहार) जगज्जननी भगवती सीताजीकी प्राकट्य-स्थली है। यहाँके श्रीजानकीमन्दिरमें उनके श्रीविग्रहके समक्ष हनुमान्‌जीकी एक विनयावनत मनोज्ञ लघुमूर्ति और दक्षिण पार्श्वमें विशाल वीरमूर्ति भक्ताभीष्टदाताके रूपमें अत्यन्त विख्यात है। जानकी-मन्दिरके पास ही पूर्वभागमें हनुमान्‌जीकी दक्षिणामूर्ति-प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इन्हींका एक छोटा-सा भव्य मन्दिर भी है, इसे बालाजीका मन्दिर भी कहते हैं। संत-महात्माजन इसे सिद्धपीठ-भूमि कहते हैं। यहाँ नामजप, श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण, श्रीरामचरितमानस और हनुमान-

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चालीसाके पाठसे सद्यः सिद्धि प्राप्त होती है। यहाँ जानकीजीके दर्शनसे पूर्व हनुमान्‌जीके दर्शन करनेकी सुदीर्घ परम्परा है।

सिद्धेश्वर हनुमान्‌जी

विद्यानुरागी राजा भोजकी धारा नगरीको आजकल धार कहा जाता है। यहाँ कुम्हार-बावड़ीके निकट सिद्धेश्वर हनुमान्‌जीका मन्दिर विख्यात है। यहाँ हनुमान्‌जी उत्तराभिमुख हैं। यह स्थान एक सिद्धपीठ है। भक्तोंका विश्वास है कि यहाँ मनःकामना सहज ही पूर्ण होती है। श्रावणमासमें बालस्वरूप श्रीहनुमान्‌जीका यहाँ बड़ी धूमधामसे झूलनोत्सव मनाया जाता है।

जनकपुरके श्रीहनुमान्‌जी

जनकपुरधाम बिहारके समीप परिक्रमा-मार्गमें हनुमान नगर नामक एक गाँव है। वहाँकी हनुमानगढ़ीके हनुमान्‌जीका श्रीविग्रह प्रसिद्ध है। स्वयं जनकपुरधाममें संकटमोचन-मन्दिर भी अत्यन्त प्रसिद्ध है।

श्रीमकरध्वज हनुमान्

श्रीजगन्नाथपुरी (उड़ीसा) के मुख्य मार्गपर श्रीमकरध्वज हनुमान्‌जीका अत्यन्त विशाल मन्दिर है। इसके विषयमें यह कहा जाता है कि जब कामदेव इस क्षेत्रमें प्रवेश करने लगे, तब उन्हें हनुमान्‌जीसे युद्ध करना पड़ा तथा अन्तमें हनुमान्‌जी विजयी हुए। इसलिये इनका नाम मकरध्वज हनुमान्‌जी पड़ गया। इस विग्रहकी एक विशेष बात यह है कि इनके एक हाथमें तलवार तथा दूसरे हाथमें काम-विजय-प्रतीक-स्वरूप विजय-ध्वज है। यहाँके श्रीहनुमान्‌जीका दर्शन करनेसे हृदयका कामभाव निवृत्त हो जाता है।

श्रीजगन्नाथपुरीमें हनुमान्‌जीके अन्य विग्रह भी हैं। यहाँ श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके चार द्वारोंपर—पूर्वमें 'फते हनुमान', पश्चिममें 'वीर हनुमान', उत्तरमें 'तपस्वी हनुमान' तथा दक्षिणमें 'बाराभाई हनुमान' विराजमान हैं। इसके विषयमें कहा जाता है कि भगवान् श्रीजगन्नाथजीने श्रीहनुमान्‌जीको यह वर दिया है कि 'तुम्हें सदा पुरुषोत्तम-क्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीमें मेरे अन्तरङ्ग भक्तके रूपमें स्थान मिलेगा और इस क्षेत्रके घर-घरमें तुम्हारी पूजा होगी। केवल इतना ही नहीं, वहाँकी ध्वजापर भी कपि-चिह्न बना रहेगा।'

आ[illegible]

इन विग्रहोंका दर्शन करके मन्दिरमें जाते हैं।

सिरुली महावीर

भुवनेश्वरमें चन्दनपुरसे कुछ दूरपर सिरुली ग्राम है। इस ग्रामके पश्चिम भागमें महावीर हनुमान्‌जीका मन्दिर अवस्थित है, जो सिरुली महावीर-मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँकी प्रतिमा दस फुट ऊँची है, जो अत्यन्त प्राचीन भी है। लोगोंमें ऐसी दृढ़ आस्था एवं श्रद्धा है कि 'सिरुली-महावीरजी'के दर्शनका अत्यन्त मङ्गलदायक प्रभाव होता है। यहाँ यह जनश्रुति भी है कि यह प्रतिमा स्वयं ही पृथ्वीको विदीर्ण करके प्रकट हुई है तथा प्रचण्ड प्राणस्पन्दनसे युक्त सजीव स्वयम्भूमूर्ति है।

श्रीमहावीरजीकी यह द्विभुजी प्रतिमा कई दृष्टियोंसे विलक्षण है। इसकी दोनों भुजाओंके बीचकी चौड़ाई आठ फुट है। इसके दाहिनी जाँघपर सीता-खोजको जाते समय श्रीरामद्वारा प्राप्त अभिज्ञानमुद्रिकाकी प्रतिकृति अङ्कित है और उसी प्रकार सीतान्वेषणके बाद लंकासे लौटते समय सीताजीद्वारा दी गयी चूडामणिकी छबि भी दर्शनीय है।

नागराके हनुमान्‌जी

मध्यप्रदेशके गोंदिया नगरसे कुछ दूर नागरा ग्राम है। यहाँ ग्रामके पश्चिम हनुमान्‌जीका छोटा, किंतु प्राचीन मन्दिर है। पासमें एक कुआँ है। यह मन्दिर और कुआँ एक टीलेको खोदनेसे निकले हैं। मन्दिरमें हनुमान्‌जीकी मूर्तिके अतिरिक्त एक शिवलिङ्ग भी है। यहाँ एक स्तम्भ है, जिसमें चारों ओर देवमूर्तियाँ खुदी हुई हैं। यहाँ शिवरात्रि तथा कार्तिकमें मेला लगता है। इस स्थानकी बड़ी महत्ता है।

सालासर बाला हनुमान्‌जी

राजस्थानके चूरू जनपदमें सालासर नामक एक ग्राम है। यहाँ हनुमान्‌जीका एक प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक मन्दिर है। यहाँ बाला हनुमान्‌जीकी मूर्ति बड़ी प्रभावशाली और दाढ़ी-मूँछसे सुशोभित है। इस मन्दिरमें भव्य प्रतिमा सोनेके सिंहासनपर विराजमान है। सिंहासनके ऊपरी भागमें श्रीराम-दरबार है तथा निचले भागमें श्रीराम-चरणोंमें हनुमान्‌जी विराजमान हैं। भाद्रपद, आश्विन, चैत्र एवं वैशाखकी पूर्णिमाओंको यहाँ मेले [illegible] स्थापना-प्रतिष्ठादि कार्य दायमा-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विप्रकुलमें समुत्पन्न श्रीमोहनदासजीके द्वारा हुआ था, इन्हें

वचनसिंह महात्माके रूपमें माना गया है। राजस्थानी समाजमें इस स्थानकी विशेष मान्यता है।

नर्मदाके हनुमान्‌जी

मध्य रेलवेकी बम्बई-दिल्ली लाइनपर इटारसीसे कुछ दूर होशंगाबादनगर है। यहाँ नर्मदाके तटपर हनुमान्‌जीका एक छोटा, किंतु प्रसिद्ध मन्दिर है, जिसमें भगवान् महावीरकी प्रतिमा विद्यमान है। यात्री तथा दर्शनार्थी पुण्यतोया नर्मदामें स्नानकर भगवान् महावीरजीके दिव्य विग्रहका दर्शन करते हैं।

संजीवनी-पर्वतधारी हनुमान्‌जी

दक्षिण भारतमें कन्याकुमारी मन्दिरके प्रवेश-प्राकारके अंदर उत्तर-पूर्वकी ओर एक प्रस्तर-स्तम्भके निचले भागपर श्रीरामभक्त हनुमान्‌जीकी संजीवनी-पर्वतधारी एक छोटी-सी आकृति उत्कीर्ण है। मन्दिरके दर्शनार्थी इस मूर्तिका दर्शनकर आगे बढ़ते हैं। प्रत्येक शुक्रवार तथा पूर्णिमाके दिन भक्तगण इस मूर्तिपर मक्खनका लेप करते हैं।

हनुमत्कुण्ड

गन्धमादन-पर्वतपर श्रीरामेश्वर-मन्दिरसे उत्तर-पश्चिम तीन फर्लांगपर हनुमत्कुण्ड है। भगवान् श्रीरामचन्द्र रावणका वध करके लंकासे यहींपर आये थे। उनकी सेनाने इसी स्थानपर युद्धजनित श्रम दूर करनेके लिये विश्राम किया था। ऐसी जनश्रुति है कि जो स्त्री पुत्र[illegible] इस पवित्र कुण्डमें स्नान करती है, वह अवश्य ही पुत्र-रत्न प्राप्त करती है। इस सम्बन्धमें एक लोकविश्रुत आख्यान है—

प्राचीन कालकी बात है। अत्यन्त नीतिज्ञ, प्रजापालक, शत्रुविजयी एवं परम धार्मिक एक धर्मसख नामक प्रख्यात नरेश राज्य करते थे। नरेशने सौ विवाह किये, किंतु उन्हें कोई संतान न हुई। धीरे-धीरे राजाकी आयु ढलने लगी और राज्यके उत्तराधिकारीके बिना वे अत्यधिक चिन्तित रहने लगे।

एक दिन नरेशने विद्वान् ब्राह्मणों एवं दैवज्ञोंको बुलाकर उनके सम्मुख अपनी चिन्ता इस प्रकार व्यक्त की—'पूज्यचरण द्विजवरो! संतान-प्राप्तिकी कामनासे मैंने सौ विवाह किये, किंतु मेरी किसी भी पत्नीसे कोई संतान नहीं हुई। अब मेरी वृद्धावस्था आ चली है और राज्यका कोई उत्तराधिकारी नहीं है। अतएव मेरी प्रत्येक पत्नी एक-एक योग्यतम पुत्र प्राप्त कर ले, इसके लिये कृपापूर्वक कोई यत्न बतलाइये। एतदर्थ मैं प्रत्येक व्रत, उपवास एवं कठोरतम तपश्चरणके लिये प्रस्तुत हूँ।'

समस्त ऋत्विज् एवं पुरोहितोंने गम्भीर मन्त्रणाके अनन्तर राजा धर्मसखसे कहा—'राजन्! दक्षिण सागरके मध्य सेतुके रूपमें गन्धमादन नामक पर्वत है। वहाँ दुःख-दारिद्र्यका नाश एवं समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला मोक्ष-प्रदाता हनुमत्कुण्ड है। वहाँ मन एवं इन्द्रियोंको संयमितकर स्नानोपरान्त सविधि पुत्रेष्टि-यज्ञ करनेसे तुम्हारी पत्नियोंको एक-एक पुत्रकी प्राप्ति हो सकती है। उस कुण्डकी अमित महिमा है।'

महाराज धर्मसख अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे यज्ञोपयोगी सामग्रियोंसहित अपनी पत्नियों, मन्त्रियों और सेवकोंके साथ गन्धमादन पर्वतके लिये प्रस्थित हुए। वहाँ जाकर उन्होंने श्रद्धा-विश्वासपूर्वक हनुमत्कुण्डमें स्नान किया। वे अपनी स्त्रियों आदिके सहित उस पवित्र कुण्डमें प्रतिदिन स्नानकर श्रीपवनकुमारका स्मरण एवं उनके चरणोंकी वन्दना करने लगे। चैत्र मास आनेपर नरेशने विधिपूर्वक पुत्रेष्टि-यज्ञका संकल्प ग्रहण किया। पुरोहित और ऋत्विजोंके शुभ सहयोगसे यज्ञ-कर्म विधिवत् सम्पन्न हुआ। तदनन्तर पुरोहितने हवनसे बचे हुए हविष्यको नरेशकी समस्त पत्नियोंको ग्रहण करनेके लिये दिया। धर्मपरायण नरेश धर्मसखने अपनी स्त्रियोंके साथ यज्ञान्त स्नानकर ऋत्विजोंको पुष्कल दक्षिणा एवं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक दान देकर संतुष्ट कर दिया। फिर वे प्रसन्न-मन अपनी राजधानी लौटे।

दसवाँ मास व्यतीत होते ही प्रजापालक धर्मसख नरेशकी समस्त पत्नियोंने एक-एक सुन्दर एवं सद्गुण-सम्पन्न पुत्र उत्पन्न किये। उन पुत्रोंके यौवनमें प्रवेश करते ही नरेशने उनमें राज्य-वितरण कर दिया और स्वयं पत्नियोंसहित तपश्चरणार्थ गन्धमादन पर्वतपर चले गये। वे वहाँ प्रतिदिन नियमपूर्वक हनुमत्कुण्डमें स्नानकर परमकारुणिक भगवान् सतीपति शिवका ध्यान करते हुए तपश्चरण करने लगे। उनकी सौ पत्नियाँ भी अपने पतिका अनुसरण करती हुई तपस्यामें संलग्न थीं। इस प्रकार राजा धर्मसख अपनी स्त्रियोंसहित गन्धमादन पर्वतपर जीवनान्त तपश्चरण करते ही रहे। शरीर-त्यागके पश्चात् उन्होंने अपनी पत्नियोंसहित परम सुखमय वैकुण्ठ-लोक प्राप्त कर लिया।

श्रीरामेश्वरम् मन्दिरसे एक मीलपर सीताकुण्डके पास ही श्रीहनुमान्‌की पञ्चमुख-मूर्तिवाला मन्दिर है। इसके अतिरिक्त रामझरोखेके रास्तेमें एक मन्दिरमें श्रीहनुमान्‌के बालरूपकी सुन्दर मूर्ति है। कहते हैं कि श्रीहनुमान्‌जीने समुद्र पार करनेका अनुमान यहींसे किया था।

श्रीमारुतिजी

आन्ध्रप्रदेशमें गोदावरीके पवित्र तटपर 'भद्राचलम्' में श्रीराम-मन्दिरके पास श्रीमारुतिजीका एक विशाल मन्दिर है। यह मूर्ति समर्थ गुरु श्रीरामदासद्वारा स्थापित बतायी जाती है।

श्रीसुपारी मारुति

औरंगाबादनगरमें श्रीसुपारी हनुमान्‌जीका एक मन्दिर है। मूर्ति पूर्वाभिमुखी तथा बैठी हुई अवस्थामें है। मारुतिके नेत्र चक्राकार होनेके कारण मुँहपर दीप्ति छायी रहती है, जिससे मूर्ति अत्यन्त भव्य लगती है। ऐसा कहा जाता है कि ये मारुति स्वयम्भू होनेके कारण पहले सुपारीके आकारके थे, इसीलिये ये 'श्रीसुपारी मारुति' कहलाते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि भावुक भक्तोंको पूजाके बाद प्रसादरूपमें सुपारी प्राप्त होती थी, जिस कारण इनका नाम 'सुपारी मारुति' पड़ गया।

तपोवन हनुमान्

महाराष्ट्रमें सांगलीमें कृष्णा नदीके तटपर विष्णुघाटके पास श्रीहनुमान्‌जीका एक प्राचीन मन्दिर है। इसका नाम तपोवन-हनुमान्-मन्दिर है। इस मन्दिरका द्वार पूर्वाभिमुख है और सामने कृष्णाका जलप्रवाह है। इस मूर्तिकी स्थापना श्रीरामदास पञ्चायतनके श्रीआनन्दमूर्तिजीने की थी।

डुल्या मारुति

पूनामें गणेशपेठके ये मारुति अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। यह मन्दिर प्राचीन है। केवल पत्थरोंसे निर्मित यह मन्दिर अतिशय आकर्षक एवं भव्य है। इनकी मूर्ति एक काले पत्थरपर उत्कीर्ण है। यह पाँच फुट ऊँची, ढाईसे तीन फुट चौड़ी तथा पश्चिमाभिमुख है। मूर्तिके दाहिने पार्श्वमें श्रीगणेशजीकी एक छोटी-सी मूर्ति है, जिसकी स्थापना श्रीसमर्थ रामदासजीद्वारा की हुई बतायी जाती है।

श्रीहनुमान्‌जी

श्रीमन्मध्वाचार्यजीने उडुपीमें एक विशाल 'उडुपीकृष्ण' मन्दिरकी स्थापना की थी। इसी मन्दिरके एक भागमें श्रीहनुमान्‌जीकी मूर्ति भी स्थापित है। आज भी उड्डुपीमें यह परम्परा है कि सर्वप्रथम श्रीहनुमान्‌जीकी पूजा की जाती है, तदनन्तर उड्डुपी कृष्णकी। यहाँ श्रीहनुमदर्चना मध्व-सम्प्रदायकी पूजाप्रक्रियाके अनुसार होती है।

कनकभूधराकार हनुमान्‌जी

कन्याकुमारीसे उत्तर कुछ दूर शुचीन्द्रम् नामक स्थान है। यहाँ एक विशाल मन्दिर है, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशके अलग-अलग मन्दिर हैं। इस मन्दिरमें श्रीहनुमान्‌जीकी एक भव्य मूर्ति है। सिंहासनसहित इस मूर्तिकी ऊँचाई लगभग बीस फुटके आसपास है। श्रीहनुमान्‌जीने भगवती सीताके समक्ष अशोक-वाटिकामें जो अपना कनकभूधराकारस्वरूप प्रकट किया था, यह श्रीविग्रह उसीकी स्मृति दिलाता है।

सं मा सिञ्चन्त्वापः सं मा सिञ्चन्तु कृष्टयः। सत्यं समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥

जल [illegible] युक्त करें। वे हमें दीर्घ आयु प्रदान करें।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोकदेवता—

व्रजके ग्राम-देवता

(डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, डी० लिट्०)

व्रजके स्थानीय लोकविश्वासमें भूत-प्रेत, अऊत-पितर, भुमिया, जोगनी और सती तथा सैयद, पीर, जिंद, खईस और चुड़ैल आदिकी मान्यता देखी जाती है। गाँवोंमें ग्राम-देवताके रूपमें इनके थान (स्थान) बने होते हैं। भयानक बुखार आनेपर तथा फसल काटने और बोनेके समय इनपर चढ़ावा चढ़ता है। अनेक ग्राम-देवताओंको जात देनेके लिये बाहरसे भी लोग आते हैं। इन देवताओंका नाम गाँवके नामके साथ जुड़ा रहता है, जैसे परखम बारौ, मौगर्र बारौ, महावन बारौ, कारस बारौ, सहादरे बारौ इत्यादि।

इस प्रकारकी पूजाओंका एक आधार जातिगत भी होता है जैसे—जोगियोंमें जाहरपीर और सुआ-सेवरा, गूजरोंमें कूआवाला, भुमियाँ, स्वामी, देवबाबा और नंदो सती, अहीरोंमें मैकासुर, काछियोंमें नगरसेन, नटोंमें भूत, बूढ़ीमाई और हरदौल, गड़रियोंमें जखइया, जाटोंमें भूत, बूढ़ा बाबू, कोरियोंमें कनुआ तथा कुछ अन्य लोगोंमें खईस, भूत-प्रेत, सैयद, जाहरपीर, नगरसेन, जखइया, कूआवालेकी पूजाका विशेष प्रचलन है।

कनुआ, जखइया, नगरसेन, मैकासुर, बूढ़ा बाबू, कूआवाला तथा हरदौल इत्यादि अनेक ग्राम-देवता हैं। कनुआने गोवर्धन और डीगके बीच दौड़खेरा गाँवको नष्ट होनेका शाप दिया था। पोतराकुंड (मथुरा) तथा नटैनिला (अलीगढ़)में भादों सुदी एकादशीको विशेष रूपसे गड़रियोंके द्वारा पशु-रक्षाके निमित्त इसकी जात दी जाती है।

राय बुंदेला हरदौलको राजाने संदेहके कारण जहर दे दिया था, यह प्रेत बनकर गूलरके पेड़पर जा बैठा था। भानजीके विवाहमें प्रेतके रूपमें इसने 'भात' दिया था। विवाहोंमें इसके गीत गाये जाते हैं— *'तुम्हारी पाग पै डारौं है राय बुंदेला ए उढ़रायल बूँदी बारौ।'*

जादूगर चुनियाँ कुम्हारीको, बंजारे गेंड़ी माताको तथा स्याने भम्मो, सोमो, बेड़नी और नौनाको पूजते हैं। मैकासुर धरमधारी कहा जाता है। इसने गायोंकी रक्षाके लिये प्राण दिये थे। देवबाबाके पास नौ लाख गायें थीं। जो नारी अपने पतिके साथ सती होती है, उसकी पूजा व्रजमें अनेक स्थानोंपर प्रचलित है। मथुरामें सुलखन नामक स्थानपर 'सती-सुहागिल' की पूजा होती है।

जाहरपीरकी पूजा तो भारतमें बहुप्रचलित है। भादों बदी नवमीको जाहरपीरका जागरण कराया जाता है। जाहरपीर बड़े पराक्रमी वीर थे। जाहरपीर नागदंशकी चिकित्साके भी देवता हैं एवं गूगागुरुके रूपमें वे गायोंके रक्षक हैं।

भुमियाँको भूमिका राजा, भूपाल एवं खेरेका रछपाल कहा जाता है। यह क्षेत्रपालकी आत्मा होती है। होली-दीवालीपर एक थानपर इसकी पूजा होती है, गीत गाया जाता है। *'भुमियाँ देव बड़ौ मरदानौ तेरे बल कौ नाहिं ठिकानौ।'*

जिन्होंने घोर पाप-कृत्य किये थे, जिन्हें भयानक आघात मिला या जो मार डाले गये, लोकमानस उनके भूतकी भी मानना करता है। जंगल, पेड़, घाट, कूआँ, चौराहा, मरघट, बेरी, पीपर, ऊसर, बंजर तथा खंडहर भूतोंके स्थान हैं। वे इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं। भैंस, गाय, बैल आदि अकारण मृत्युके शिकार हो जायँ, स्त्रियोंके गर्भ गिर जायँ या बच्चा पैदा होते ही मर जायँ तो घरके आस-पास भूत-प्रेतके विचरणकी आशंका की जाती है। प्रेत-बाधा दूर करनेके लिये पीपल रोपा जाता है। जो लोग संतानहीन मर जाते हैं, वे अऊत कहलाते हैं, उनका श्राद्ध नहीं होता, परंतु विवाहके अवसरपर पितरोंके साथ अऊत भी मनाये जाते हैं।

बाल्यावस्थामें ही मरनेवालोंकी आत्माको मसानके रूपमें मनाया जाता है; क्योंकि वह बच्चोंको कष्ट देता है। मसान काला भयानक बालभूत है, जिसे सभी देवताओंका भानजा समझा जाता है। बच्चोंको सूखा रोग लग जानेपर सूखा मसान तथा फलक हो जानेपर फलकिया मसान कहा जाता है।

जिन्न या जिंद विलक्षण शक्तिवाला मृतात्मा है, जो बेरिया, पीपल, बरगद, बबूर और पोखरपर भूतके समान ही विचरण करनेवाला है। जिंद-सम्बन्धी किस्सोंमें उसे बड़े-बड़े पंजोंवाले शैतान-जैसे रूपमें तथा परीके साथ विचरण करता हुआ बताया जाता है। जिन्नकी सेवासे दुर्लभ चीजें उपलब्ध करने-सम्बन्धी किस्से कहे-सुने जाते हैं। खईस केसर-केवड़ाकी झाड़ियोंमें रहता है, वह सैयदसे भी अधिक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्तिशाली होता है।

द्रोहिणी तथा घातक स्त्री मरनेके उपरान्त चुड़ैल होती है—ऐसा लोक-विश्वास है। डाकिनी-शाकिनी और योगिनीके वर्गमें ही इसका समावेश माना जाता है।

व्रजके गाँवोंमें सैयदकी पूजाका बहुत प्रचार है। सैयदकी पूजा मजारपर होती है। बाँके मीयाँकी मजार (बदायूँ) एवं जलेसर तथा अमरोहाकी मजार प्रसिद्ध है। यहाँ हिंदू और मुसलमान सभी जातियोंके लोग सम्मिलित होते हैं। सैयदकी जात दी जाती है और जागरण भी कराया जाता है। व्रजके गाँवोंमें कुछ जातियोंमें विवाहके अवसरपर रत-जगेके समय जो सैयदके गीत गाये जाते हैं, उनमें सैयदको योद्धा बताया गया है।

व्रज-लोकमानसका विश्वास है कि जो मनुष्य अकाल-मृत्युसे मरते हैं, उनकी गति नहीं होती तथा वे भूत-प्रेतकी योनिमें रहते हैं, साँप बन जाते हैं। असामान्य मृत्युसे मृत व्यक्तिकी आत्मा घरमें आकर चेटक दिखाती है, वह नागबलि, गङ्गा-स्नान तथा थान बनवानेकी माँग करती है। जिन आत्माओंकी पूजा व्रजके ग्रामोंमें प्रचलित हैं, वे चार प्रकारकी हैं।

(१) जिन पुरुष और नारियोंने सामाजिक सांस्कृतिक मूल्योंकी रक्षाके लिये अपनेको बलिदान किया था, वे लोकमानसमें वीर देवताके रूपमें प्रतिष्ठित और पूज्य हैं, जैसे—जाहरपीर, जखइया, मैकासुर, हरदौल, देवबाबा, ऊदादेव, कनुआं बाबा, ठड़िशोभा, अमरसिंह दीवान, लौहर्रादेव, हीरामन और जगतसिंह।

(२) जो महात्मा जनताकी भलाईके लिये साधना करते-करते समाधिस्थ हो गये, वे सिद्ध देवता हैं। जीवनमें उनके पास जो सिद्धियाँ थीं, वे ही सिद्धियाँ उनके थान तथा प्रतीकमें भी स्वीकार की जाती हैं, जैसे बूढ़ा बाबू, सिद्धबाबा, रामचेरौ, ग्वालबाबा, बहोराबाबा, धाँधू भगत, सूआसेबरौ, खुसालीबाबा, गुलजारीदेव, लालमनि, जोगाराम, गोरखनाथ, भज्जूबाबा, कुंजनदास, भीसमदेव, बरमदेव, बाबरौ बाबा, खेखलौ आदि इस वर्गमें हैं।

(३) इसके अतिरिक्त लोकमानस उन दुष्टोंकी आत्माओंको भी पूजता है जो जिंदगीभर लोगोंको परेशान करते रहे। लोक-वि[illegible] लोगोंको पीड़ित करेंगे।

(४) वास्तवमें मृतकोंकी पूजा (Cult of dead) की प्रथा सारे संसारमें अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित है। लोग अपने परिवारकी मृतात्माओंको गृहदेवता और कुलदेवता या पुरखा पतमेसुरेके रूपमें पूजते हैं। बस्तीसे दूर वृक्षके नीचे इनका थान बनवा दिया जाता है, जब भी कोई पारिवारिक मङ्गल-आयोजन होता है, तब इनकी पूजा-मानता की जाती है। सिन्दूर, धूप, दीप, नैवेद्य, ऋतुफल, जल और गन्धाक्षतसे थानकी पूजा होती है।

पुरखा पतमेसुरेके प्रसादके अधिकारी बहन-भानजे होते हैं तथा पुरखा-पतमेसुरेकी प्रसन्नताके लिये बहन-भानजोंको जिमाकर 'घाट-दुपट्टा' पहनाया जाता है। विवाह-जनेऊ आदिके अवसरोंपर पितरोंकी स्थापना-हेतु 'थापा' लगाया जाता है एवं उनका आवाहन किया जाता है।

माँय-पूजाका निर्माल्य 'पुरखा पतमेसुरे'के थानपर ही सिराया जाता है, विवाहके अवसरपर नवदम्पति थानपर ही बागछरी खेलते हैं। श्राद्ध भी पितरोंकी तृप्तिका एक विधान है।

कुछ विद्वानोंकी मान्यता है कि जिन्हें थान कहा जाता है और जो मथुरा-व्रजमण्डलकी ग्रामीण बस्तियोंमें अनेक छोटे चबूतरोंके रूपमें विद्यमान हैं, मूल-रूपमें वे यक्षस्थान हैं तथा यक्षपूजाकी परम्पराके अवशेष हैं। मथुराके 'जखन' गाँव तथा व्रजमें यमुनातटके 'भाण्डीर' वनका सम्बन्ध यक्षोंसे जुड़ा हुआ प्रतीत होता है।

यक्षोंको वीर भी कहा जाता था। इनकी संख्या बावन बतायी जाती है। विक्रमाजीतने इनको वशमें किया था। 'रांझा' में ये वीर ही सहायता करते थे। व्रजकी लोक-कहानियोंमें 'वीरोंकी रैठान' का उल्लेख मिलता है। जाख, जखैया तथा बरमदेव यक्षपूजाके अवशेष हैं। महावनवाला देवता जखइया है।

व्रजके ग्राम-देवताओंकी इस चर्चामें देवताओंके उन प्रतीकोंकी चर्चा भी प्रासंगिक होगी जो व्रजमें प्रचलित हैं। यहाँका लोकमानस सूर्य, चन्द्र, वायु इत्यादिके देवरूपकी उपासना प्रतीकके रूपमें करता है। धरतीके रूपमें मिट्टीका धोंधा बनाया जाता है, तो बायबंदके रूपमें वायुका बन्धन [illegible] और बाजुरेकी गाजसे बाँधा जाता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माङ्गलिक अनुष्ठानोंमें मिट्टीकी डेलीपर मौरी बाँधकर अथवा सतियो, सुपाड़ी, हल्दीकी गाँठ तथा स्वर्णमुद्राको ही गणेशके रूपमें पूजा जाता है। घूरा, सतियो, थापा, गाज, चाक, हल, मूसल, चकरोंडा, कठौती, ल्हौसारिया, घरगुली, फूल छबरिया, छटी, कोल्हू, अनंत, लोंदरी-लोंदराकी पूजा प्रतीक-पूजा है।

बच्चोंके उलटे दाँत निकलनेपर हलकी पूजा होती है। हरियाली मावस तथा माहकी दोजको किसान लोग हलकी पूजा करते हैं। तेलीके कोल्हू, बनियोंकी तराजू, ब्राह्मणकी लेखनी और भागवत-ग्रन्थ, बही-खाता, क्षत्रियोंकी तलवारकी पूजा भी प्रतीक-पूजा है। मूसल कृषि-संस्कृतिका प्रतीक है।

थापा पितरोंका तथा बूढ़ेबाबूका प्रतीक है। घरमें बहू आनेपर तथा लड़केका जन्म होनेपर इनकी पूजा होती है। सात सूतोंकी गाज तथा चौदह गाँठोंसे युक्त सूत्र अनंत है। अनन्तचतुर्दशीको अनन्तकी पूजा होती है। अनंत नाग है। कुम्हारका चाक सर्जनका प्रतीक है। विवाहोंमें चाककी पूजा की जाती है। कहानी है कि रामकी बरात चली तो गणेश चाकके नीचे जा छिपे, तभीसे चाककी पूजा प्रारम्भ हुई। चाक चक्रका प्रतिरूप है। कहते हैं कि स्वयं भगवान्ने बर्तन बनानेके निमित्त कुम्हारको यह चाक प्रदान किया था।

मथुराके चतुर्वेदियोंमें उपनयन (जनेऊ) के समय वटुक लोग गाजे-बाजेके साथ घूरा पूजने जाते हैं, इस यात्राको घूरौडेल कहा जाता है। शादीमें लड़केपर हल्दी चढ़ाकर, दीपक जलाकर लड़कीकी आँख बाँधकर उसे घूरेपर ले जाया जाता है। लौटते समय 'कजैतिन', 'सांझलरी' तथा 'दीवलरा' नामक गीत गाये जाते हैं। छेई-पूजन भी घूरा-पूजनेका ही रूप है।

माङ्गलिक अवसरोंपर आँगन लीपकर हल्दी तथा आटेसे सतियो काढ़ा जाता है। सामान्यतया गृहिणियाँ प्रतिदिन देहलीपर सतियो काढ़कर उसकी पूजा करती हैं। व्यापारी लोग अपनी गद्दियोंपर सतिये काढ़ते हैं।

नागपञ्चमी व्रजमें नागपूजाका प्रमुख त्यौहार है, परंतु 'रतवारे', 'नागबलि'-जैसी परम्परा भी प्रचलित है, जो जन्म-विवाह-संस्कार तथा अनिष्ट-निवारणके लिये की जाती है। कई बार निःसंतान दम्पतिसे नागबलि करनेको कहा जाता है। स्वप्नमें साँप दीखनेपर ज्योतिषी लोग पीपलपर दूध चढ़ाने अथवा नागबलिका परामर्श देते हैं। कालियनाग नाथनेके प्रसंगका भागवत-पाठ करना ही नागबलिका अनुष्ठान माना गया है। बालकके जन्मपर 'रतवारे' नामक नागपूजा-विधानमें अदृश्य-रूपसे दीवालपर नाग काढ़े जाते हैं, जब कि नागपञ्चमीको दूधमें कोयला घिसकर द्वारपर नाग धरे जाते हैं अथवा गोबरके नाग बनाये जाते हैं। अनेक स्त्रियाँ मथुरामें नागटीलेपर बाँबी पूजने जाती हैं तथा वृन्दावनके कालियदह-मन्दिरमे भी नागपूजाके अनुष्ठान होते हैं।

व्रजमण्डलमें प्रायः हर घरमें तुलसीका पौधा रहता है, स्त्रियाँ जल चढ़ाती हैं और दीपक जलाकर विनय करती हैं कि—

तुलसी माता तू सुखदाता तू श्रीकृष्ण की प्यारी,
मैं बिरुला सीचों तेरौ तू कर निसतारौ मेरौ।
मूँग भात कौ खायबौ दीजो पीतांबर कौ पैरबौ दीजो,
चंदन की लकड़िया दीजो श्रीकृष्ण कौ कंधा दीजौ॥

एक अनुश्रुतिके अनुसार वृन्दाने कृष्णकी तपस्या करके वरदान माँगा था कि मैं तुम्हारी लीलाके लिये एक निकुञ्ज बनाऊँगी, उसमें छः ऋतुएँ एक साथ विलसित होंगी, तुम प्रतिदिन उस निकुञ्जमें अपनी कान्ताके साथ विहार करना।

कार्तिक-स्नान करके स्त्रियाँ तुलसीके विवाहके गीत गाती हैं। एक गीतमें कहानी आती है कि जब तुलसी सिरपर गागर लेकर यमुना-किनारे श्रीकृष्णके दर्शनके लिये गयीं तो रुक्मिणीने तुलसीको पकड़कर झकझोर डाला और बुरा-भला कहा। श्रीकृष्णने देखा तो पूछा—'तुलसी ! तुम आज इतनी अनमनी क्यों हो ?' तुलसीने उत्तर दिया—***'हो राम तुमरी रुकमिन लाड़ली और हम डारीं झकझोर।'*** कृष्ण बोले—'नहीं तुलसी ! तुम्हीं मुझे प्रिय हो, क्योंकि मैं जब तुम्हें अपने हृदयपर धारण करता हूँ तब मेरा हृदय ठंडा हो जाता है।'

तुलसी और शालग्रामके विवाह और प्रेमकी कथा तथा उनकी पूजाकी परम्परा यहाँ बहुत प्राचीन कालसे चली आ रही है। कार्तिक मासमें तुलसी-सेवाकी प्रथा है। घर-घरमें बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ संध्याके समय तुलसीके बिरवेपर दीपक सँजोकर उनके विवाहका गीत गाती हैं—

आसौढ़ उजियारी तीजा लै रे बाबउ रानी तुलसा के बीजा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जोतहु बोवहु करहु कियरियाँ धनि जा मलिया बेटा जायौ।
तुलसी को बिरवा सींच जमायौ॥
सावन तुलसा पात दुपाती भादौं तुलसा गहल गंभीरी।
क्वार में तुलसा कान कुंवारी कातिक तुलसी कौ रचौ है बियाहू।
बोलौ रानी तुलसा कौन वर ब्याहूँ॥
सूरज ना ब्याहूँ उअत उहाएं, चौदुल ना ब्याहूँ एक पखवारे।
ब्रह्मा ना ब्याहूँ चार मूँड़ वारे, विष्णुहि ना ब्याहूँ चार भुजाधारी॥
महादेव ना ब्याहूँ वे जटाधारी, हनुमान ना ब्याहूँ वे बलधारी।
शुक्रहि ना ब्याहूँ एक आँख काने, शनीचर ना ब्याहूँ गिरहन घेरे॥
मंगल ना ब्याहूँ हीरा पीरि वारे, बुद्धहि न ब्याहूँ बुद्ध कुबुद्धी।
बिसपित ना ब्याहूँ बिसपित सीरी, गणेशजी ना ब्याहूँ सूँड़ सुँडारे॥
ब्याहूँ श्रीकृष्ण वे मेरे कंता, ब्याहूँ श्रीकृष्ण जग उजियारे।
सोदहु पंडित लगन लिखावो, तुलसा की लगन द्वारका पठावो॥
नौमी के मांगर दसमी कौ तेला, एकादशीया कौ मंडप छवायौ।
पवित्रा द्वादशी ब्याह रचायौ॥

तुलसी-शालग्रामके विवाहके इस मनोरथका बहुत महत्त्व है। व्रजमें विश्वास किया जाता है कि बिना तुलसाके ठाकुरजी भोग ग्रहण नहीं करते—

तुलसा महारानी नमो नमो,
हरि की पटरानी नमो नमो।
छप्पन भोग छतीसौ व्यंजन,
बिन तुलसा हरि एक न मानी नमो नमो॥
जो जन तुलसा कौ ध्यान धरत हैं
तिनकूँ हरि अपनौ करि जानी नमो नमो॥

सप्तर्षि

सप्तर्षिमण्डल आकाशमें सुप्रसिद्ध ज्योतिर्मण्डलोंमें है। इसके अधिष्ठाता ऋषिगण लोकमें ज्ञान-परम्पराको सुरक्षित रखते हैं। अधिकारी जिज्ञासुको प्रत्यक्ष या परोक्ष, जैसा वह अधिकारी हो, तत्त्वज्ञानकी ओर उन्मुख करके मुक्ति-पथमें लगाते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें इनमेंसे कुछ ऋषि परिवर्तित होते रहते हैं। इनकी नामावली (विष्णुपुराणके अनुसार) इस प्रकार है—

प्रथम स्वायम्भुव मन्वन्तरमें—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ।
द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तरमें—ऊर्ज्ज, स्तम्भ, वात, प्राण, पृषभ, निरय और परीवान्।
तृतीय उत्तम मन्वन्तरमें—महर्षि वसिष्ठके सातों पुत्र।
चतुर्थ तामस मन्वन्तरमें—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर।
पञ्चम रैवत मन्वन्तरमें—हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि।
षष्ठ चाक्षुष मन्वन्तरमें—सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु।
वर्तमान सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरमें— काश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज।
अष्टम सावर्णिक मन्वन्तरमें—गालव, दीप्तिमान्, राम, अश्वत्थामा, कृप, ऋष्यशृङ्ग और व्यास।
नवम दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें—मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सवन और भव्य।
दशम ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तरमें—तपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु।
एकादश धर्मसावर्णि मन्वन्तरमें—वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, निःस्वर, हविष्मान्, अनघ और अग्नितेजा।
द्वादश रुद्रसावर्णि मन्वन्तरमें— तपोद्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोधन, तपोरति और तपोधृति।
त्रयोदश रौच्य मन्वन्तरमें—धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और निष्प्रकम्प्य।
चतुर्दश भौम मन्वन्तरमें— अग्नीध्र, अग्निबाहु, शुचि, युक्त, मागध, शुक्र और जित।
इन ऋषियोंमेंसे सब कल्पान्त-चिरजीवी, मुक्तात्मा और दिव्यदेहधारी हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आध्यात्मिक उन्नति और मनुष्य-जीवनको सफल बनानेवाले गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित सत्साहित्यका घर-घर प्रचार-प्रसार करें, करावें।

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

श्रीराधा-माधव-चिन्तन—ग्रन्थकार—श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र, सजिल्द, मूल्य-२२.०० (बाईस रुपये) मात्र, डाकखर्च अलगसे।

प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रद्धेय श्रीभाईजीने भगवान् श्रीराधा-माधवकी सुमधुर लीलाओंका शास्त्रसम्मत, सुरुचिपूर्ण और सरस वर्णन किया है। यह श्रीभाईजीके व्यापक अध्ययन, गम्भीर चिन्तन और गहन रसानुभूतिका परिणाम है। इस ग्रन्थका मननपूर्वक अध्ययन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सचमुचमें ग्रन्थकारके हृदयमें स्थित होकर स्वयं राधा-माधवने इसे लिखा है।

इस ग्रन्थके प्रत्येक प्रकरणके आदि और अन्तमें तथा कहीं-कहीं प्रकरणके बीचमें भी प्रतिपाद्य विषयके संग्राहक ग्रन्थकारके कुछ पद भी दे दिये गये हैं, जिनसे प्रकरणोंमें और भी सजीवता आ गयी है। इस प्रकार वर्तमान संग्रह व्रज-रस—मधुर-रसका एक अमूल्य आकर बन गया है।

प्रस्तुत संस्करणमें श्रीराधा-माधव-चिन्तन-परिशिष्ट पुस्तकके तो सभी लेख सम्मिलित कर ही दिये गये हैं, साथ-ही-साथ लेखक महानुभावके श्रीराधा-माधव-सम्बन्धी अन्य कुछ लेखोंका भी जो अबतक पुस्तकाकार-रूपमें प्रकाशित नहीं हुए हैं, उनका यथास्थान समावेश कर दिया गया है, जिससे इस ग्रन्थके कलेवर एवं उपयोगितामें और भी वृद्धि हो गयी है। ऐसे महान् पवित्र ग्रन्थको भक्तगण मँगानेमें शीघ्रता करें।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (सचित्र, हिन्दी-भाषान्तरसहित) प्रथम भाग, सचित्र, सजिल्द, मूल्य ४०.०० (चालीस रुपये) मात्र, द्वितीय भाग, मूल्य ३५.०० (पैंतीस रुपये) मात्र, केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द, मूल्य ४०.०० (चालीस रुपये) मात्र, डाकखर्च अलग।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी वेदतुल्य प्रतिष्ठा है। यों भी महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं, अतः विश्वके समस्त कवियोंके गुरु हैं। उनका 'आदि काव्य' श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भूतलका प्रथम महाकाव्य है। अतः समस्त मानव-जातिके लिये यह ग्रन्थ पूज्य है। भारतके लिये तो यह परम गौरवपूर्ण ग्रन्थ है और देशका सच्चा बहुमूल्य राष्ट्रिय कोश है, अतः सर्वथा संग्रह, पठन, मनन एवं श्रवण करने योग्य है। इसका एक-एक अक्षर महापातकका नाश करनेवाला है—'एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्।' सुतरां इच्छुक सज्जन मँगानेमें शीघ्रता करें।

विदुरनीति—(सरल हिन्दी-अनुवादसहित) मूल्य ३.०० (तीन रुपये) मात्र, डाकखर्च अलग।

महाभारत उद्योगपर्व (प्रजागरपर्व) के ३३वेंसे ४०वें अध्यायतकका अंश विदुरनीतिके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें विदुरजीने महाराज धृतराष्ट्रको धर्म, सदाचार, न्यायपरायणता, स्वार्थत्याग, परोपकार, सत्य, क्षमा, संयम, अहिंसा, निर्लोभता आदिकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए राजधर्मका उपदेश दिया है। यह पुस्तक अनपढ़, विद्वान्, तरुण, वृद्ध, बालक, स्त्री, शासक, प्रजा, धनी, गरीब, विद्यार्थी, शिक्षक, सेवाव्रती और शुद्ध तथा सुखी जीवनका निर्माण चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके कामकी है। इसे संस्कृत-परीक्षाके पाठ्यक्रममें रखा गया है। विद्यार्थियोंके लिये यह बड़े कामकी वस्तु है। विस्तृत विषय-सूची भी दी गयी है, जिससे श्लोकोंके भाव समझनेमें और भी सुविधा हो गयी है।

महाभारतके कुछ आदर्श पात्र—मूल्य २.२५ (दो रुपये पचीस पैसे) मात्र, डाकखर्च अलग।

प्रस्तुत पुस्तिकामें 'कल्याण' वर्ष १७, अङ्क १२ से दो लेख संगृहीत किये गये हैं। 'महाभारतमें श्रीकृष्ण' शीर्षक लेखके लेखक हैं— परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार और 'महाभारतके कुछ आदर्श पात्र' नामक शीर्षकके लेखक हैं—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका। इन दोनों लेखोंमें महाभारतके दस उत्कृष्ट पात्र— भगवान् श्रीकृष्ण, महात्मा भीष्म, धर्मराज युधिष्ठिर, वीरवर अर्जुन, कुन्तीदेवी, देवी द्रौपदी, पतिभक्ता गान्धारी, महात्मा विदुर, मन्त्रिश्रेष्ठ सञ्जय और भगवान् [illegible]ई बार [illegible] जीवनकी आदर्श, महत्त्वपूर्ण और उपदेशप्रद घटनाएँ हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वप्नमें साँप [illegible]